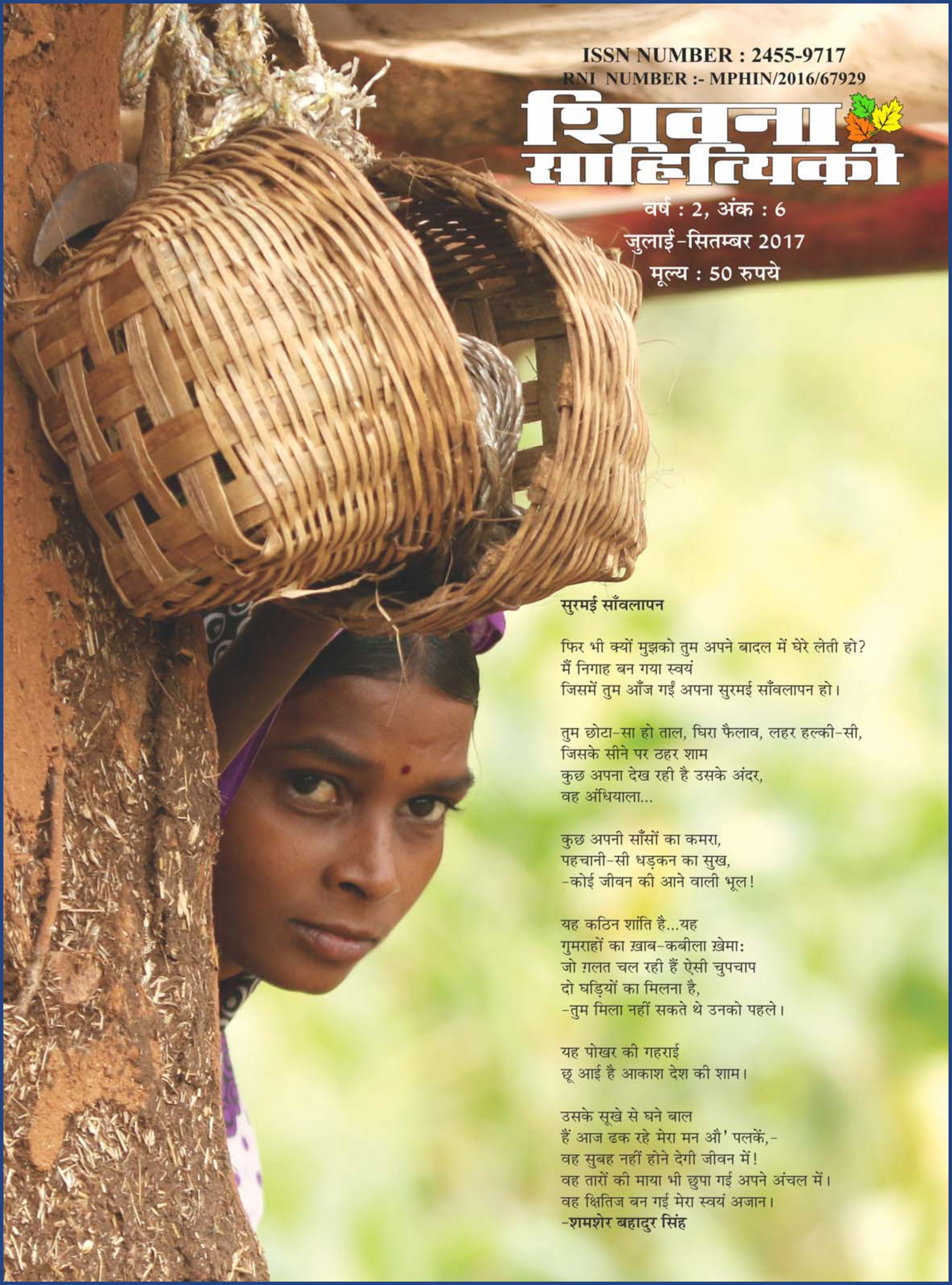

ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 2, अंक : 6
जुलाई-सितम्बर 2017
मूल्य : 50 रुपये

सुरमई साँवलापन

फिर भी क्यों मुझको तुम अपने बादल में घेरे लेती हो?
मैं निगाह बन गया स्वयं
जिसमें तुम आँज गईं अपना सुरमई साँवलापन हो।

तुम छोटा-सा हो ताल, घिरा फैलाव, लहर हल्की-सी,
जिसके सीने पर ठहर शाम
कुछ अपना देख रही है उसके अंदर,
वह अंधियाला...

कुछ अपनी साँसों का कमरा,
पहचानी-सी धड़कन का सुख,
-कोई जीवन की आने वाली भूल!

यह कठिन शांति है...यह
गुमराहों का ख़ाब-कबीला ख़ेमा:
जो ग़लत चल रही हैं ऐसी चुपचाप
दो घड़ियों का मिलना है,
-तुम मिला नहीं सकते थे उनको पहले।

यह पोखर की गहराई
छू आई है आकाश देश की शाम।

उसके सूखे से घने बाल
हैं आज ढक रहे मेरा मन औ' पलकें,-
वह सुबह नहीं होने देगी जीवन में!
वह तारों की माया भी छुपा गई अपने अंचल में।
वह क्षितिज बन गई मेरा स्वयं अजान।
-शमशेर बहादुर सिंह

शिवना प्रकाशन : नए सेट की पुस्तकें

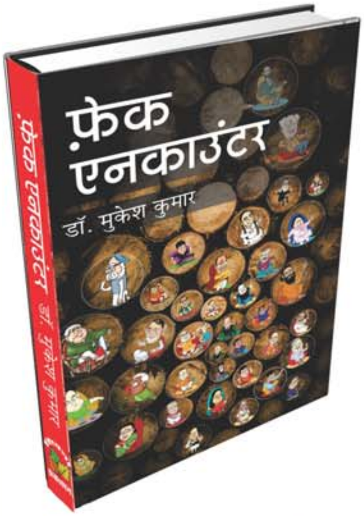

सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा स्तंभ लेखक श्री मुकेश कुमार के समय-समय पर लिखे गए व्यंग्य लेखों का संग्रह-
फ़ेक एनकाउंटर
मूल्य : 300 रुपये

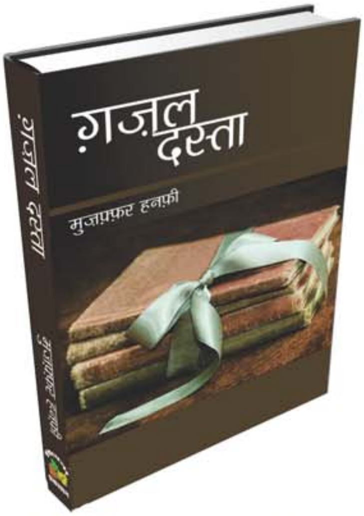

उर्दू के वरिष्ठतम शायर प्रोफ़ेसर मुज़फ़्फ़र हनफ़ी की प्रसिद्ध ग़ज़लों का संग्रह देवनागरी लिपि में-
ग़ज़ल दस्ता
मूल्य : 220 रुपये

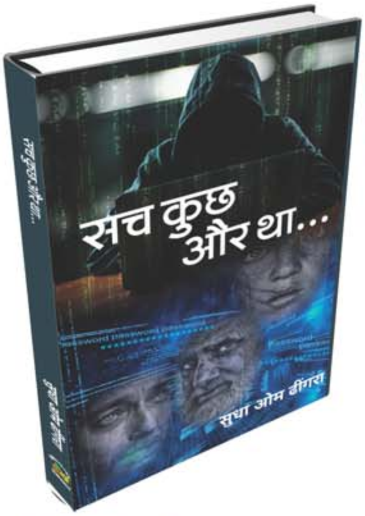

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा की नई कहानियों का संग्रह-
सच कुछ और था...
मूल्य : 250 रुपये

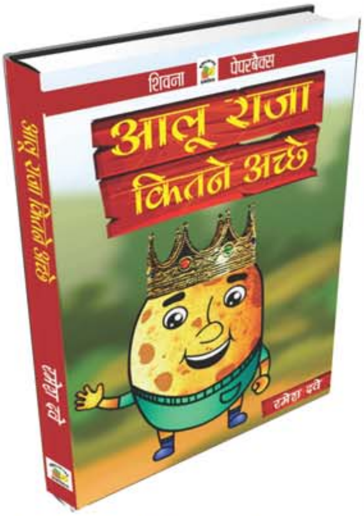

हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक, समीक्षक तथा कथाकार रमेश दवे की बाल कहानियों का संग्रह-
आलू राजा कितने अच्छे
मूल्य : 50 रुपये

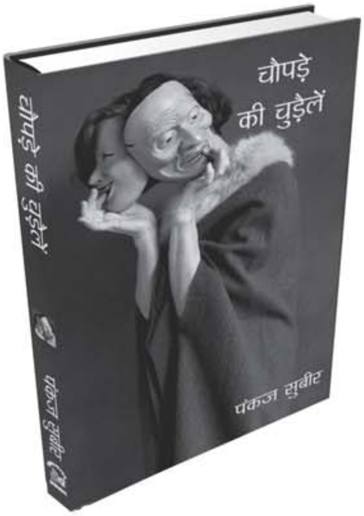

हिन्दी के चर्चित कहानीकार तथा उपन्यासकार पंकज सुबीर की नई तथा चर्चित कहानियों का संग्रह-
चौपड़े की चुड़ैलें
मूल्य : 250 रुपये

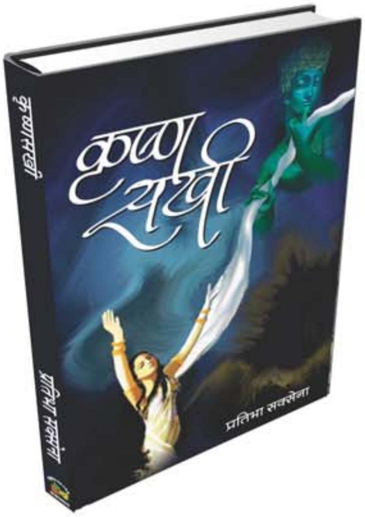

प्रवासी साहित्यकार प्रतिभा सक्सेना का महाभारत की पौराणिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास-
कृष्ण सखी
मूल्य : 375 रुपये

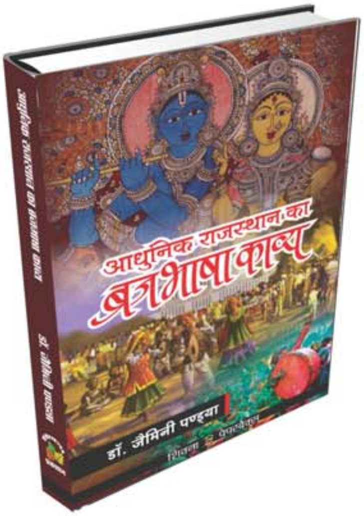

आलोचक तथा समीक्षक डॉ. जैमिनी पण्ड्या द्वारा राजस्थान के ब्रज काव्य पर पुस्तक-
आधुनिक राजस्थान का ब्रजभाषा काव्य
मूल्य : 550 रुपये

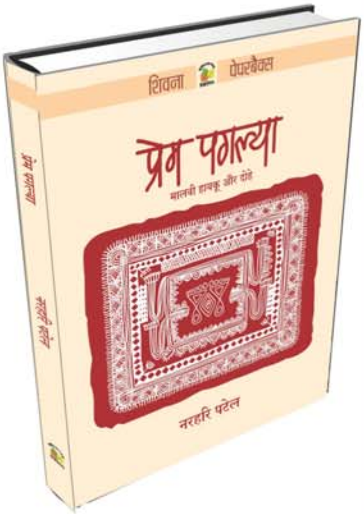

मालवी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरहरि पटेल के मालवी बोली के हायकु और दोहों का अनूठा संग्रह-
प्रेम पगल्या
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 2, अंक : 6

त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2017

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

ISSN : 2455-9717

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक

सुधा ओम ढींगरा

●

प्रबंध संपादक

नीरज गोस्वामी

●

संपादक

पंकज सुबीर

●

कार्यकारी संपादक

शहरयार

●

सह संपादक

पारुल सिंह

●

आवरण चित्र

पल्लवी त्रिवेदी

●

डिज़ायनिंग

सनी गोस्वामी

●

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय

पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6

सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001

दूरभाष : 07562405545, 07562695918

मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)

ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'

http://shivnaprakashan.blogspot.in

फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'

https://facebook.com/shivna prakashan

●

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क

200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)

1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

बैंक खाते का विवरण :

Name: Shivna Sahityiki

Bank Name: Bank Of Baroda

Branch: Sehore (M.P.)

Account Number: 30010200000313

IFSC Code: BARB0SEHORE

कुछ यूँ...

आवरण कविता

शमशेर बहादुर सिंह

संपादकीय

शहरयार / 4

व्यंग्य चित्र

काजल कुमार / 5

आवरण चित्र के बारे में....

विस्मय / पल्लवी त्रिवेदी /6

उपन्यास अंश

पागलखाना / डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी /7

संस्मरण आख्यान

होता है शबोरोज़ तमाशा मिरे आगे

सुशील सिद्धार्थ / 11

कथा-एकाग्र

नीलाक्षी फुकन / 17

अनीता सक्सेना / 20

पुस्तकें चर्चा

हँसी की चीखें / कांता राय / 22

एक वह कोना / गोविंद भारद्वाज / 27

पहाड़ पर धूप / यादवेंद्र शर्मा / 41

फिल्म समीक्षा के बहाने

हिन्दी मीडियम, माम

वीरेन्द्र जैन / 23

बातें-मुलाक़ातें

कृष्णा अग्निहोत्री

ज्योति जैन / 25

रंगमंच

आर्यभट्ट और नाटक 'अन्वेषक'

प्रज्ञा / 28

पेपर से पर्दे तक

कृष्णकांत पंड्या / 32

पुस्तक-आलोचना

यादों के गलियारे से / कैलाश मण्डलेकर / 36

समीक्षा

वंदना गुप्ता / वो सफ़र था कि मुकाम था / 39

शिखा वार्ष्णेय / उडारी / 42

डॉ. ज्योति गोगिया / धूप से रूठी चाँदनी / 43

योगिता यादव / लौट आया मधुमास / 45

शरद सिंह / अंदर का स्कूल / 48

तरही मुशायरा / 38, 44, 47, 50

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

संपादकीय

हर पक्ष की सम्यक चर्चा हो

शहरयार

shaharyarcj@gmail.com

शिवना साहित्यिकी का यह अंक बहुत कुछ उस तरह का है जिस तरह की कल्पना इसको शुरू करते समय थी। कल्पना यह थी की शिवना साहित्यिकी एक चर्चा का मंच बने। यहाँ पर रचनाओं के स्थाना पर रचना चर्चा हो। लेकिन अभी तक के अंकों में यह करना संभव नहीं हो पा रहा था। उसके पीछे कारण यह था कि हमें उतनी मात्रा में आलोचना, चर्चाएँ नहीं मिल पा रही थीं, जितनी पुस्तक के लिए आवश्यक होती हैं। इसलिए हमें कहानियाँ, कविताएँ आदि भी लगाने पड़ रहे थे। जबकि इन विधाओं के लिए हमारी दूसरी पत्रिका विभोम-स्वर है, वहाँ सभी विधाओं की रचनाओं के लिए पर्याप्त स्थान है। शिवना साहित्यिकी का यह अंक इस पत्रिका के आलोचना पत्रिका में बदलने की एक शुरूआत है। लेकिन यह शुरूआत आगे भी इसी प्रकार जारी रहे इसके लिए लेखकों के सहयोग की सबसे ज़्यादा आवश्यकता हमें होगी। कथेतर गद्य की बहुत सी विधाएँ ऐसी हैं जिनको हम यहाँ प्रकाशित करना चाहते हैं। इसके अलावा संपादक मंडल की यह भी इच्छा है कि यहाँ पर हम कहानी पर भी चर्चा करें, जैसे कि इस बार हमने अजय नावरिया तथा मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानियों पर एकाग्र चर्चा की है। इन दिनों कहानियों पर चर्चा का क्रम कुछ बाधित हुआ सा लगता है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बहुत अच्छी कहानियाँ प्रकाशित होती हैं और पाठकों की प्रशंसा पाने के बाद भी उन पर उस तरह चर्चा नहीं हो पाती जिस प्रकार होनी चाहिए। इस मामले में कविताओं की क़िस्मत अच्छी है कि उन पर चर्चा हो जाती है। उपन्यासों पर तो चर्चा होती ही है। कहानी पर एकाग्र स्तंभ इस पत्रिका में इसी उद्देश्य से प्रारंभ किया गया है। कहानियों पर सार्थक चर्चा हो और कहानियों के सकारात्मक पक्ष के साथ उसके नकारात्मक पक्ष पर भी चर्चा हो। नकारात्मक पक्ष इसलिए क्योंकि उसके बिना चर्चा पूरी नहीं होगी। कोई भी रचना पूरी नहीं होती, पूर्ण नहीं होती। कुछ न कुछ कमी उसमें रहती है। यदि हम यहाँ पर उस कहानी के कमज़ोर पक्ष की भी चर्चा करते हैं तो हम वास्तव में उस लेखक का ही भला करेंगे। बशर्ते कि उसे इसमें अपना भला दिखाई देता हो। विकास एक सतत प्रक्रिया है जो चलती ही रहती है। एक लेखक का विकास भी इसी प्रकार जीवन भर चलता है। यदि हम यहाँ चर्चा के माध्यम से उसके विकास में अपना कुछ योगदान देते हैं तो यह कहानीकार के लिए भी अच्छा होगा और कहानी के लिए भी। इस प्रकार की चर्चाएँ पूर्व में बहुत हुआ करती थीं, किन्तु समय के साथ जैसे-जैसे आलोचना सुनने की क्षमता में कमी आई, वैसे-वैसे यह चर्चाएँ कम होती चली गईं। और इसी कारण यह हुआ है कि कहानी का विकास एक बिंदु पर आकर रुका हुआ दिखाई देता है।

इस बार समीक्षाएँ भी हमें अच्छी संख्या में मिली हैं। समीक्षाओं की कमी तो पत्रिकाओं को कभी नहीं रहती, हाँ अच्छी समीक्षाओं की रहती है, वो अलग बात है। हिन्दी की समीक्षा अभी भी प्रशंसा पत्र की श्रेणी से बाहर नहीं निकल पा रही है। व्यक्तिगत संबंधों का निर्वाह करने के चक्कर में समीक्षक वही लिख देता है जो कुछ लेखक को पसंद आ जाए। इस प्रकार की समीक्षा से दोनों को नुकसान होता है। लेखक भ्रम में रहता है और समीक्षक की विश्वसनीयता पाठक की नज़र में कम होती है। इसकी चर्चा पूर्व में भी एक संपादकीय में की जा चुकी है। लेकिन चर्चाएँ तो करते रहने पड़ेगा ही। इन चर्चाओं से यदि कुछ सकारात्मक परिणाम मिलते हैं तो चर्चा करते रहने में क्या बुरा है। आलोचना को लेकर भी हमारी चिंता है। लेकिन फिर भी हम बहुत कठिन और गूढ़ आलोचना से बचना चाह रहे हैं। हम चाहते हैं कि आलोचना यदि हो तो वो सबकी समझ में आए। कम से कम पाठक की तो समझ में आए ही। आलोचना ऐसी न हो जो अपने बौद्धिक आतंक से पाठक को, संपादक को, लेखक को सबको आतंकित करने का प्रयास करे, जैसा कि इन दिनों हो रहा है। कठिन हो जाना अच्छे हो जाने का कोई पैमाना नहीं है। सरल रह कर भी अच्छा हुआ जा सकता है। मुख्य गुण तो संप्रेषणीयता है, यदि वह है तो फिर कठिन और सरल का कोई फर्क नहीं पड़ता है। यदि पुस्तक आलोचना है तो उसमें पुस्तक के हर पक्ष की सम्यक चर्चा हो। तुलनात्मक चर्चा हो, और उस तुलनात्मक अध्ययन का सही-सही परिणाम पाठक के सामने रखा जाए। भाषा, शिल्प, शैली सभी की विस्तार से चर्चा हो। उस आलोचना को पढ़कर पाठक तय कर सके कि उसे यह पुस्तक खरीदना है और पढ़ना है अथवा नहीं। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी नई मूवी को देखने से पहले उसके बारे में दर्शक उसकी समीक्षाएँ पढ़ता है और फिर तय करता है कि देखने जाना है अथवा नहीं। यहाँ पर भी बात वहीं है कि चूँकि दोनों चीज़ें पाठक की ही लगेंगी, समय भी और पैसा भी, इसलिए यह आलोचक की ज़िम्मेदारी होती है कि वो पाठक के समय और पैसे का ध्यान रखे न कि लेखक के साथ अपने व्यक्तिगत संबंधों का। हिन्दी के सामने अभी सबसे बड़ी चिंता पाठक नाम की दुर्लभ प्रजाति को बचाने की है। यदि उसे बचाना है तो हम सबको अपने-अपने स्तर पर तो प्रयास करने ही होंगे।

शहरयार

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

आवरण चित्र कथा

विस्मय

पल्लवी त्रिवेदी

एफ़ 6/17, चार इमली, भोपाल, मप्र
trivedipallavi2k@gmail.com

विस्मय कभी भी ख़त्म नहीं होना चाहिए। विस्मय से भरी आँखों में एक कैसी अनोखी सी प्यास भरी चमक होती है जानने की। एक मुलायम कौतुक। विस्मय मासूमियत का पर्याय है। विस्मय को मैं हैरानी से भी अलग रखती आयी हूँ, आश्चर्य से भी। हालाँकि ये सब पर्यायवाची हैं मगर विस्मय शब्द को जब मैं विजुअलाइज़ करती हूँ तो एक आश्वस्ति भरी मुस्कान तैर जाती है होंठों पर। हाँ ..अभी कौतुहल ज़िंदा है, अभी कुछ जानने की निर्दोष प्यास बरकरार है ! विस्मित निगाहें एक खूबसूरत दृश्य है मेरी आँखों के लिए। विस्मय दिखाई देता है ठिठक कर रुकी हिरनी की आँखों में, किसी नई वस्तु को छूकर देखते बच्चे की आँखों में, पहली बार थ्री डी चश्मे से फिल्म देखते बुज़ुर्ग की आँखों में और प्रकृति के अविश्वसनीय नज़ारे देखते यायावर की आँखों में। और ठीक यही विस्मय दिखाई दिया था मुझे इस खूबसूरत साँवली स्त्री की आँखों में। उस रोज़ मैं अपने एक फ़ोटोग्राफर मित्र के साथ सुबह सुबह फ़ोटोग्राफ़ी के लिए भोपाल शहर के केरवा डैम आउट स्कर्ट्स में निकल गयी थी। भोपाल शहर की एक सबसे खूबसूरत बात यह है कि करीब दस किलोमीटर शहर से बाहर निकलते ही हम भूल जाते हैं कि हम किसी प्रदेश की राजधानी में हैं। दूर दूर तक फैले खेत, नदी, हरियाली से ढके हुए पहाड़ एक अलग ही संसार में ले जाते हैं। महज पन्द्रह मिनिट में हम शहर की आपाधापी से बाहर प्रकृति के बीच साँसें लेने लगते हैं। उस दिन भी केरवा नदी के किनारे-किनारे चलते जा रहे थे और आसपास खेतों में नज़र आते पक्षियों को क्लिक करते जा रहे थे। शायद ओरिएण्टल हनी बजार्ड दिखाई दिया था इस खेत में हमें जिसका पीछा करते करते खेत के भीतर चले गए थे और खेत में बनी एक झोंपड़ी में खेलते एक बच्चे की मोहक मुस्कान हमें उस झोंपड़ी में खींच ले गई थी। गाँव में अभी भी नए आये शहरी लोग कौतूहल का विषय होते हैं। उस पर भी अगर बड़े बड़े कैमरे थामे कोई सीधे आपके घर पर आ खड़ा हो तो कौतूहल और बढ़ जाता है। बच्चे का पिता हमारे पास आ खड़ा हुआ था और हम उससे बातें करने लगे थे। घर के भीतर काम करती स्त्री अजनबी आवाज़ें सुनकर देखने चली आई थी लेकिन यह देखना भी एक ओट से था कि सीधे बाहर निकल आने और अजनबियों के बीच आकर खड़े हो जाने में एक ग्रामीण स्त्री का सहज संकोच आड़े आ जाता है। बस एक पायल छनकी थी और मैंने उस मधुर ध्वनि की दिशा में देखा था। विस्मय से लबालब बड़ी बड़ी आँखों वाला एक साँवला मुख लकड़ी के खंबे की आड़ से झाँक रहा था और अगले ही पल मेरे कैमरे में कैद हो गया था। उसके अगले ही पल मेरी मुस्कराहट ने उस संकोच को पिघला दिया था और यह स्त्री, उस बच्चे की माँ मुस्कुराती हुई बाहर निकल कर आ गई थी। फिर माँ, बच्चे के कई फ़ोटो मैंने क्लिक किये थे। एक खूबसूरत वक्त तीन प्राणियों के इस परिवार के साथ बिताया था और कैमरे में और मन में इस मुलाकात की स्मृति सहेजे लौट आये थे। विस्मय बहुत आह्लादकारी शब्द है। इसे बचे रहना चाहिए कि पृथ्वी की सुंदरता भी बची रहे।

❑❑❑

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2017

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

उपन्यास अंश

पागलखाना

डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

(पद्मश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी हमारे समय के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यंग्यकार हैं। उनके चार उपन्यास 'बारामासी', 'नरक यात्रा', 'मरीचिका' और 'हम न मरब' अत्यंत चर्चित और पाठकों के बीच बहुत लोकप्रिय हुए हैं। उनके पिछले उपन्यास 'हम न मरब' के लिए उन्हें 'ढींगरा फ़ाउण्डेशन कथा सम्मान 2015' भी अमेरिका के मोर्रिस्विल्ल शहर में प्रदान किया गया था। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी का पाँचवा बहुप्रतीक्षित उपन्यास 'पागलखाना' जो कि बाज़ारवाद पर केंद्रित है, वह इस वर्ष अक्टूबर में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होकर आ रहा है। इस उपन्यास पर वे पिछले दो साल से कार्य कर रहे थे। उन्हीं के अनुसार लगातार असंतुष्ट रहने के कारण उन्होंने छह ड्राफ़्ट लिखने के बाद उपन्यास को पूरा किया है। 305 पेजों का यह उपन्यास तीन माह बाद अक्टूबर में पाठकों के हाथ में होगा। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यासों का पाठकों को बेसब्री से इंतज़ार रहता है। शिवना साहित्यिकी के पाठकों के लिए यहाँ प्रस्तुत हैं 'पागलखाना' से कुछ अंश चार अध्यायों 'पागल समय और पागलों के बारे में एक कैफियत', 'उन दिनों जब पूरी दुनिया बाज़ार में तब्दील हो रही थी', 'यहाँ कौन तय करे कि पागल कौन है', 'भगवान् बाज़ार के साथ था क्योंकि वह पागल नहीं था' के रूप में। बाज़ारवाद से घिरे समय में यह उपन्यास एक चुनौती होगा बाज़ारवाद को।)

पागल समय और पागलों के बारे में एक कैफियत

बड़ा अजब-गजब समय आया हुआ था।

गजब था कि समय कुछ इस तरह बाज़ार का हो गया था कि वह अब किसी और का नहीं रह गया था। और अजब यह हुआ था कि पहले तो बाज़ार किसी बेहद सुहानी घटा की तरह आया था परंतु फिर वह धीरे-धीरे फैलकर एक डरावनी काली घटा सा सब तरफ छा गया था।

डरावने बादलों ने सारी दुनिया को घेर लिया था।

बाज़ारवाद का अँधेरा अब सब तरफ इतना घना था कि समय को समय नहीं सूझता था।

फिर काले आकाश में तेज बिजलियाँ भी चमकने लगीं।

कुछ समझदार ज़रूर चौकन्ने हुए। वे जानते थे कि यह बिजली जिधर भी गिरी, सब जला देगी। परंतु सभी लोग ऐसा नहीं मान रहे थे। बाज़ार के पैरोकार भी थे, और ये दिनों दिन बढ़ ही रहे थे।

बाज़ार को भगवान् मानने वाले इन लोगों ने सबसे इसे नई तरह की रोशनी मानने का इसरार किया। बाज़ार की घनी घटाओं के बीच चमकती बिजली से सब तरफ चकाचौंध मच जाती। वे कहते कि देखो तो कि कैसी बढ़िया रोशनी! यह रोशनी अजीब थी। इसमें सब दिखता भी था और सारा परिदृश्य अँधेरे में भी रहा आता था। दुनिया इस नई रोशनी की चकाचौंध में खूब देख तो पा रही थी, पर वास्तव में कुछ भी नहीं देख पा रही थी।

दुनिया बाज़ारवाद के कब्ज़े में आ गई थी। दुनिया बाज़ार में रहना और जीना सीख रही थी। पर कुछ लोगों ने बाज़ारवाद को पागलपन माना तथा बाज़ार को पागलखाना। एक चमकीले अँधेरे से भरा हुआ पागलखाना।

इन लोगों ने इस अँधेरे से भागने की कोशिशें शुरू कीं।

तो क्या ये लोग पागल थे?

पर दुनिया जब एक विराट पागलखाने में बदल रही हो तब भला कौन तय करता कि असल में पागल कौन है? वे जो बाज़ार से भाग रहे थे, या वे जो बाज़ार का हिस्सा हो गये थे?

बड़ा पागल समय था यह

यह इसी कठिन समय की कहानी है

तो यह उस समय की बात है जब बाज़ार ही जीवन की हर शै तय करने लगा था या कहें कि ठीक उन दिनों के आसपास की बात है यह कि जब...?

***

उन दिनों जब पूरी दुनिया बाज़ार में तब्दील हो रही थी

दुनिया में किसी को पता ही नहीं चला और उसका दुनिया पर कब्ज़ा हो गया।

मनुष्य को कानोकान खबर नहीं हुई और जीवन पर बाज़ार का पूरा कब्ज़ा हो गया। यह सब कुछ इतने कौशल से हुआ कि स्वयं जीवन को ही अहसास नहीं होने दिया गया कि वह किसी के कब्ज़े में आ गया है। जीवन को तो अपनी पराजय की खबर ही नहीं मिली। सब लोग बाज़ार के कब्ज़े में एक-एक करके आते चले गये और किसी को पता ही नहीं चला। न वहाँ दुश्मन के दस्ते उतरे, न कोई बिगुल बजे, न किसी गोला बारूद का इस्तेमाल हुआ, न ही रणभेरी बजी। बस, कब्ज़ा हो गया।

ऐसा भी नहीं था कि कब्ज़ा होने पर जीवन नहीं बचा हो। नहीं। बाज़ार अपने कैदियों का बड़ा ख़याल रखता है। सो जीवन तो आज भी था। वैसा ही जीवंत दीखता भी था। बल्कि कई मायनों में तो वह पहले से भी शानदार और गुलज़ार प्रतीत होता था। दिन वैसे ही आते थे। अभी भी सुबहें सुहावनी होती थीं। शाम भी वैसी ही आती थी। रात भी ठीक उसी तरह उतरती थी। सब कुछ वही था पर कुछ था जो अब वैसा नहीं था। अब भी सुबह तो होती थी परंतु सूरज यूँ ही हर एक को फोकट में उपलब्ध नहीं था। रोशनी और धूप के लिये बाकायदा पेमेंट करना पड़ता था। बाज़ार का सिद्धान्त था कि जीवन में कुछ भी मुफ्त में मिलने की आशा करना भी पाप है—'नो फ्री

लंचेज़ प्लीज...'। अब सूरज, चाँद, सितारे भी बाज़ार का हिस्सा बन चुके थे। वे दिन हवा हो चुके थे जब लोग कहते थे कि धूप, रोशनी, पानी और हवा पर सबका बराबर का नैसर्गिक अधिकार है। अब सूर्योदय उन्हीं घरों में होता था जिन्होंने सूर्य का प्री-पेड कार्ड बनवा रखा हो और समय पर इसे रीचार्ज भी करते रहते हों। बाज़ार ने सूरज को अपनी मुट्ठी में बाँध लिया था और सूरज बाज़ार का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाया। न तो बाज़ार की हथेलियाँ ही जलीं, न ही उसके हाथ की रेखाएँ। बाज़ार की पकड़ ही बेहद ठंडी थी, या कि बाज़ार के समक्ष सूरज का तेज ही ठंडा पड़ गया था—कहना बेहद कठिन था। जो हो, अब रोशनी के सर्वाधिकार बाज़ार के पास थे।

तो क्या आदमी के हाथ बस अँधेरा रह गया था?...नहीं। अब अँधेरे भी बाज़ार के कब्ज़े में थे। अँधेरों की भी अलग तरह की स्कीमें निकाल रखी थीं बाज़ार ने। आप पैसा देकर हर अँधेरे को अपने मज़े के लिये इस्तेमाल कर सकते थे। अब अँधेरे आनंददायक भी हो सकते थे। मादक भी। स्वप्निल भी। उत्तेजक भी। बाज़ार में अँधेरे और तरह से भी उपलब्ध थे। किसी और के इलाके या घर को यदि गहन अंधकार में डुबोना हो तो बाज़ार उसकी व्यवस्था भी कर सकता था। यहाँ तक कि बाज़ार अँधेरे की अंतर्राष्ट्रीय सुपारी तक ले सकता था। किसी पूरे के पूरे देश को भी अँधेरे में डुबोया जा सकता था बशर्ते कि बाज़ार को इसमें अपने फायदे की कोई स्कीम नज़र आ जाये। अँधेरा बाज़ार की ताबेदारी में था। अँधेरे में रहने को अभिशप्त लोग भी, अँधेरे में सुरक्षित रहने के लिये बाज़ार पर निर्भर हो गये थे। बाज़ार उन्हें चमकीली चप्पलें बेचता था।

चाँद, तारे, दिन, रात, प्रकाश, अंधकार, मौसम और श्वासें—सब बाज़ार के कब्ज़े में चले गये थे या जाते जा रहे थे।

इस तरह बाज़ार जब पूरी कायनात को ही अपने कब्ज़े में लेने के लिये दसों दिशाओं में एक साथ बढ़ा जा रहा था, तब की ही कहानी है यह।

***

यहाँ कौन तय करे कि पागल कौन है

डॉक्टरी के बाज़ार की एक लकदक क्लीनिक है यह।

इलाके का बेहद सफल सायकेट्रिस्ट है इस क्लीनिक का डॉक्टर।

लोग जिन्हें भ्रम है कि वे पागल नहीं है, वे लोग यहाँ उन लोगों को लेकर आते हैं जिन्हें वे पागल समझते हैं। वैसे प्रायः यह तय करना कठिन है कि किसको यहाँ लाया जाना चाहिये था और कौन आ गया है। पागलपन के मापदण्ड साफ नहीं हैं। बहरहाल।

किसी भव्य शोरूम जैसी है यह क्लीनिक।

बड़े-बड़े काँच। दीवारों पर ऐसी मायावी रोशनी जो दिखाती कम है, छुपाती ज़्यादा है। एक तरफ की दीवार पर डॉक्टर को समय समय पर मिले कई तरह के प्रमाणपत्र लगे हैं। सुंदर काग़ज़ और बढ़िया छपाई वाले प्रमाणपत्र। बेहद आलीशान फ्रेमों में जड़े प्रशंसापत्र तथा डिग्रियाँ। इतने सुंदर है ये प्रमाणपत्र कि देखते ही इनके नकली होने का अहसास होता है।

क्लीनिक के प्रतीक्षालय में मरीज अपनी बारी आने की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। तीन तरफ शानदार सोफे लगे हैं। यहाँ ऐसे गद्दीदार सोफे हैं कि बैठो तो धँस जाओ, और फिर धँसते ही चले जाओ। नितम्ब पाताल में, सिर आसमान में।...कई डिज़ाइनर कुर्सियाँ भी वहाँ धरी हैं।

वहीं एक छोटा सा आकर्षक कोना भी है। सुंदर सी रिसेप्शनिस्ट बैठी है वहाँ।

शानदार, संगमरमरी टाइल्स कदमों में। सिर पर, फाल्स सीलिंग की ऐसी भव्य-सी छत कि पागलों तक को अपनी खोपड़ी पर रश्क हो उठे जिसे ऐसी शानदार छत के नीचे बैठने का सौभाग्य मिला।

दरअसल इस क्लीनिक में सब कुछ इतना भव्य, शानदार और हसीन है कि एकबारगी तो विश्वास ही न हो कि यहाँ पागलों का इलाज होता होगा। पर होता है। हाँ, पागलों पर इस भव्यता का कितना असर होता होगा, यह पता नहीं।

बहरहाल, शहर के बेहद मशहूर मानसिक रोग विशेषज्ञ की क्लीनिक है यह। पुराने दिन होते तो वह 'पागलों का डाक्टर' कहलाता। आज तो कोई पागल भी उसे ऐसा नही कहेगा। परंतु बीमारों के इलाज की इस जगह को एकदम शोरूम जैसा चमकीला, लकदक बना रखा है डॉक्टर साहब ने। डाक्टर जानता है कि वह बाज़ार में बैठा है। ''आजकल की चमकीली दुनिया में अपनी क्लीनिक भी बड़ी चमकदार रखनी पड़ती है ज़नाब वर्ना कौन इत्ता पागल है कि यहाँ अपने पागलपन का इलाज कराने की इतनी फीस देगा?'' कभी, किसी को हँसकर बता रहा था कि यही साइकेट्रिस्ट!

क्लीनिक में इतने मरीज़ हैं कि देखकर ही आपको डर लगने लगता है। बाप रे! इतने पागल! ये क्या हो रहा है दुनिया को?...क्या दुनिया में वास्तव में पागल इतने बढ़ रहे हैं? या कहीं समझदारों को भी तो पागल करार नहीं कर दिया जा रहा?

क्लीनिक की एक दीवार पर 'हिप्पोक्रेट्रीज़ की शपथ' टँगी है।

मरीजों की निस्वार्थ सेवा करने की शपथ।

बाज़ार ऐसी शपथ, सद्‌वचन, उद्‌घोषणाओं, नारों को बहुत सम्मान का स्थान देता है। यहाँ भी देखिए न कि कहाँ टँगी है यह शपथ?

नहीं, नहीं, शपथ फाँसी पर नहीं टँगी है। वह, बस एक शानदार, आबनूसी फ्रेम में क़ैद भर है। वहाँ छटपटा रही हो तो देखकर तो पता नहीं चल पा रहा। दरअसल महँगा फ्रेम ही आपका इतना ध्यान खींच लेता है कि शपथ के शब्दों पर ध्यान ही नहीं जाता। बाज़ार में आजकल सद्‌वचनों, आप्तवाक्यों, सूक्तियों का भी अपना एक बहुत बड़ा बाज़ार है। लोग इन्हें अपने दफ्तरों तथा घरों आदि में बढ़िया, शानदार फ्रेम में जड़कर सही जगह पर लगाकर रखते हैं। फ्रेम यदि एक बार चमकीला, नक्काशीदार और बहुत महँगा वाला लगा दो तो फिर इस बात का कहीं कोई ख़तरा नहीं रह जाता कि आदमी का ध्यान उस विचार की तरफ भी जा सकता है।

फ्रेम में शपथ के साथ हिप्पोक्रेट्रीज़ की तस्वीर भी है।

इस तस्वीर में जरा हिप्पोक्रेट्रीज़ की शक्ल तो देखो! वह स्वयं ही बड़े दर्द में प्रतीत होता है। जानने वाले समझदार बताते हैं कि इसका चेहरा क्लीनिक में चल रहे 'डाक्टरी धंधे' के कारण दर्द में नहीं है, वह तो था ही ऐसा। वैसे भी, जिसने अपना सारा जीवन दुनिया के बारे में चिंतन और चिंता में

गुजारा हो, उसका चेहरा ऐसा ही तो निकल आयेगा।

यहाँ हिप्पोक्रेट्रीज़ की शपथ की नाक के ठीक नीचे, मरीजों की मंडी लगी हुई है। अपने नंबर की प्रतीक्षा में रत, बोर होते एक मरीज ने बैठे-बैठे उस दीवार पर यूँ ही नज़र डाली है। उसे लगा कि फ्रेम में बँधा हिप्पोक्रेट्रीज़ ज़ोर-ज़ोर से कसमसा रहा है। यार, ये इतना ही कसमसाता रहा तो कहीं फ्रेम तोड़कर, यह नीचे न आ गिरे! मरीज़ का मन तो किया कि साथ आई पत्नी को यह बात बताई जाये पर वह बोला कुछ नहीं। यहाँ कौन उसकी बात मानेगा? सब उसे पागल मानते हैं। चुप बैठे रहना ही बेहतर। हिप्पोक्रेट्रीज़ जाने, और उसका काम जाने।

अलबत्ता, उसने अचानक ही पाया कि उसके ठीक पास बैठे एक बूढ़े ने भी यही बात नोट की है। 'देखा तुमने?' उसने इशारे से बूढ़े को पूछा। बूढ़े ने सिर हिलाकर हामी भरी पर होठों पर उँगली रखकर बोलने से मना भी किया।

दोनों बस, एक दूजे को देखकर बेसाख़्ता हँस पड़े। दोनों हिप्पोक्रेट्रीज़ की तरफ इशारा करके आपस में मुस्कुराने लगे। रिसेप्शनिस्ट ने दोनों को ध्यान से देखा। वहीं से बैठे-बैठे इन दोनों को इशारा किया। 'चुपचाप बैठो अंकल...' उसने घूरकर ही इशारे से कह दिया।

बूढ़े के साथ आये युवक ने भी पलटकर दोनों को घूरा। 'आराम से बैठो न पापा...' उसने डपटकर कहा, फिर उस सुंदर रिसेप्शनिस्ट की तरफ देखकर मुस्कराने लगा। 'क्या करें! बाप हैं' वाले भाव में 'तुम बहुत सुंदर हो' वाला भाव मिला दो तो जैसा चेहरा बनेगा, वैसा चेहरा लेकर वह रिसेप्शन पर बैठी युवती को घूर रहा है।

उधर के अलावा युवक बार-बार अपनी घड़ी को भी घूर रहा है। समय देख-देखकर परेशान हो रहा है। शायद उसे कहीं निकलना था और यहाँ देर हुई जा रही है। हिप्पोक्रेट्रीज़ से ज़्यादा परेशानी दिख रही है उसके चेहरे पर। 'कितनी देर और लगेगी?' उसने रिसेप्शन पर बैठी सुंदरी से पूछा।

'बस, इनके बाद आपका ही नंबर है।' रिसेप्शनिस्ट ने मुस्कुराकर सूचना दी।

और ठीक उसी समय हिप्पोक्रेट्रीज़ ने हिकारत से नीचे थूका!

वो तो अच्छा रहा कि बूढ़े ने ऐन मौके पर हिप्पोक्रेट्रीज़ को ऐसा करते देख लिया वर्ना थूक तो ऐसा उचटा था कि उस पर और उसके बेटे, दोनों पर गिरता। बूढ़ा एकदम से अपनी सीट से उचक कर कूद गया। कूदते-कूदते उसने बेटे को भी एक तरफ धकेलकर उस पर भी थूक पड़ने से बचा लिया।

'ये क्या कर रहे हो पापा?' युवक धक्का खाकर रिसेप्शनिस्ट की काँच से ढकी मेज तरफ लड़खड़ा गया था।

'वो...वो बूढ़ा तुम पर थूक रहा था...' बूढ़े ने दीवार पर टँगी शपथ पर बनी तस्वीर की तरफ उँगली उठाकर बताया।

युवक बाप को गुस्से से घूरने लगा और घूरता ही रहा। बाप सहम गया। बाप को खा जाने वाली नज़रों से देखता हुआ वह रिसेप्शनिस्ट लड़की से माफी माँगते हुए बोला, 'ये बस ऐसे ही दिन भर कुछ भी उल्टा-सीधा करते रहते हैं!'

लड़की ने मुस्कुराकर उसकी परेशानी को समझने की मुद्रा में अपना सिर हिलाया।

'अब आप एकदम चुपचाप बैठना पापा...एकदम चुपचाप!...नंबर आने ही वाला है' युवक ने उन्हें वापस सोफे पर बिठा दिया।

बाक़ी पागल भी बूढ़े को देखकर मुस्कुराने लगे। कु छ तो पहले से ही बिना कारण के स्वयं में ही मग्न बेबात मुस्कुरा रहे थे—पागल थे न।

समय ही ऐसा आ गया था कि अब केवल पागल ही मुस्कुरा पा रहे थे।

***

भगवान् बाज़ार के साथ था क्योंकि वह पागल नहीं था

साइकेट्रिस्ट की उसी क्लीनिक की एक दीवार में भगवान का सुंदर सा आला बना है।

मूर्ति के समक्ष दीपकनुमा रोशनी के बल्ब जल रहे हैं। भगवान यहाँ बेवज़ह मुस्कुराते बैठे हैं। वे सब कुछ इतनी निरपेक्षता से ताक रहे हैं मानो कि यह दुनिया उनकी बनाई दुनिया ही न हो...या शायद यह उनके हाथों से निकल गई दुनिया हो!

अभी क्लीनिक में बड़ी भीड़ है। रहती ही है।

'क्या हो गया बाबा को?' एक बच्चे के साथ अधेड़ सी औरत बैठी है। उसी ने, पास बैठे बूढ़े के साथ वाली औरत से, मानो यूँ ही, टाइम काटने के लिये पूछ लिया।

बूढ़ा ऊँघ रहा है। वह अपनी बारी की प्रतीक्षा में सोफे पर ऊँघ रहा है अथवा डॉक्टर द्वारा दी गई दवाइयों के प्रभाव में उनींदा है, बताना बड़ा कठिन है। उसके पास बैठी उसकी पत्नी ऊँघते पति को बड़ी चिंतित निगाहों से देख ही रही थी जब बच्चे के साथ आई औरत ने उससे पूछा कि बाबा को क्या हो गया है?

इधर बच्चा एकदम चुप बैठा हुआ है। वह बीच-बीच, बिना किसी की भी तरफ देखे मुस्कुराने लगता है। एकाध बार वह ज़ोर से हँसा भी तो साथ आई औरत ने उसे चुप बैठने को कहा। बच्चे की मुस्कान और हँसी बच्चे जैसी नहीं है, और डराने वाली बात यह है कि यह बात यहाँ किसी को भी डरा नहीं रही।

समय ऐसा है कि बच्चे तक पागल हुए जा रहे हैं और सब लोग इसे एकदम सामान्य सी घटना मान लेते हैं।

'क्या हो गया बाबा को?' उसने फिर पूछा।

'पता नहीं!...बस, दिन रात डरे से रहते हैं!' बुढ़िया ने चिंतित निगाह से बूढ़े की तरफ देखते हुए कहा।

'क्यों? किस बात का डर?'

'बस, घबराए रहते हैं। सोते ही नहीं।...एक जगह भी चैन से बैठते नहीं। बेचैन घूमते हैं घर भर में। ...ज़रा-ज़रा सी आहट पर भी चौंक जाते हैं। ...रात भर पलंग पर चौकन्ने बैठे रहते हैं। सोते नहीं। ...हरदम डरे रहते हैं।' जब कोई यूँ सहानुभूतिपूर्वक पूछ ही रहा है तो औरत ने अपना सारा दर्द एक साथ उड़ेल दिया।

'कहते क्या हैं?...आख़िर क्या डर है?'

'अब क्या कहें आपको?...बताते शर्म आती है।...एकदम बच्चों जैसी बातें।'

'फिर भी...?'

'कहते हैं कि हम दोनों अब जूना पुराना सामान हो गये हैं।...घर में हम किसी पुराने अटाले जैसे पड़े रहते हैं।...कहते रहते हैं कि अपने बच्चे हमें कहीं ओएलएक्स पर न निकाल दें।...घर का पुराना-धुराना सामान बेचने की इंटरनेट पर कोई जगह है न-ओएलएक्स? वहीं। हरदम यही कहते हैं कि कहीं से जो कभी इनको हमारे ठीक दाम

मिल गये तो ये बच्चे ज़रूर हमें ऑनलाइन बेच देंगे।'

'ऐसे कैसे?'

'वो विज्ञापन में दिखाते हैं न कि बस सामान की फोटो खींचकर ओएलएक्स पर डाल दो तो कोई न कोई खरीद ही लेता है।...पुराने सामान के भी खूब ग्राहक हैं न आजकल।'

'अरे यह तो ठीक है, पर इनको अपना ऐसा क्यों लग रहा है?'

'बस, एक दिन ये बरामदे में बैठे थे, यूँ ही आराम कुर्सी पर। बेटे ने उस दिन नया मोबाइल खरीदा था। उसने अपना यह मोबाइल इनको भी दिखाया। उसी से इनकी तस्वीर भी खींच ली। फिर दिखाने लगा कि देखो पापा, कितनी शानदार फ़ोटू आई है आपकी!...बस, उसी के बाद इनका ये हाल है। कहते हैं कि हमें मूर्ख समझता है बेटा कि हम असली बात को नहीं समझेंगे। 'पर मैं तो तुरंत समझ गया। उसने मुझे बेचने के लिये ही ऐसी शानदार तस्वीर खींची है ताकि ग्राहक को सामान पसंद आ जाये।' उस दिन से, बस यही रट लगा रखी है। बेटे ने बहुत समझाया। औरों ने भी इनसे बात की है। खूब समझाया है सबने। पर ये हैं कि मानते ही नहीं। अब तो घर के बाहर कहीं ज़रा सी आहट भी हो, कोई पोस्टमैन भी दरवाज़े की घंटी बजाये-चौंक कर इधर-उधर भागने लगते हैं कि ज़रूर कोई ग्राहक आ गया है!...'

बुढ़िया रुआँसी हो गई सारा कुछ बताते बताते।

बच्चे के साथ आई औरत सारी रामकथा ध्यान से सुनती रही। बीच-बीच में वह उस बूढ़े को भी देखती रही जो सोफे पर दुबका हुआ सा बैठा है।

बुढ़िया सारी रामकहानी कह कर अब चुप हो गई थी।

औरत भी सबकुछ सुनकर थोड़ी देर तक चुप रही।

फिर वह औरत बुढ़िया के कान के पास आकर एकदम फुसफुसाकर बोली, 'क्या पता कि बाबा शायद सच ही कह रहे हों?'

'जी?' बुढ़िया ने आश्चर्य से उसे देखा।

'जी हाँ! हो सकता है कि बाबा पागल न हों। मान लो कि वे सच कह रहे हों?...मानलो कि सही बात पर ही डर रहे हों, तो?'

'कैसी अजीब बातें कर रही हैं आप?'

'देखिये माताजी, दुनिया में कभी कहीं कोई भी बात जब पहली बार होती है तो हमें शुरू में वह अजीब ही लगती है!'

'मतलब यह, कि आपका भी मानना है कि हमारा बेटा अब हमें पुराना सामान मानता है?'

'क्यों नहीं मान सकता? बताइये न? और वही क्यों, बहुत से बच्चे ऐसा ही मानते हैं।...हाँ, माँ बाप को किसी पुराने सामान की तरह ऑनलाइन निकाल देने का आपके बेटे का यह आयडिया ज़रूर एकदम नया है।'

'उसका ऐसा कोई भी आयडिया नहीं है, समझीं आप?' बुढ़िया नाराज़ होने लगी।

'नाराज़ न हों। भगवान् करे कि ऐसा ही हो।...परंतु, वैसे आपको यह कैसे पता कि उसका ऐसा कोई आयडिया नहीं है? हो सकता है कि हो।...क्यों नहीं हो सकता?...हो सकता है कि बाबा तो सब कुछ समझ गये हों और आप ही ग़लतफहमी में हों?'

'कैसी घटिया और उल्टी-सीधी बातें कर रही हैं आप?'

'इसमें उल्टा-सीधा जैसा तो कुछ भी नहीं है आंटी। और यह ऐसी घटिया बात भी नही है। जरा सोचिये न! यह क्यों नही हो सकता कि बाज़ार में बूढ़े माँ-बाप को खरीदने की कोई आकर्षक स्कीम हाल ही में लांच हो गई हो?...आजकल बाज़ार में कुछ भी हो सकता है। रोज़ होता रहता है। अरे, जब कचरा खरीदने तक की स्कीमें तक लांच हो रही हैं तो यह क्यों नहीं हो सकती?'

'आप भी पागल हैं क्या?'

'देखिये, नाराज़ न हों।...बात को तनिक समझें।...मैं कोई ग़लत नहीं बोल रही। मैंने तो बस आपको यही बताया न कि हो सकता है कि अंकल पागल न हों।...हो सकता है कि आपके बेटे ने आपको यहाँ बस इसीलिये भेजा हो...'

'किसलिए भेजा हो?...' बुढ़िया तैश में आ गई।

'शायद इसीलिये भेजा हो कि यहाँ की दवाइयों के नशे में अंकल घर में सोते रह जायें और इन्हें सोते-सोते ही, आराम से पैक करके किसी खरीददार को पकड़ाया जा सके। जागते आदमी को बेचना ज़रा मुश्किल होगा न, तभी।...पिताजी जागते रहेंगे तो वे फाल्तू का हल्ला भी कर सकते हैं न?...ग्राहक भड़क जायेगा।...बाज़ार मानता है कि कुछ भी हो, ग्राहक को नहीं भड़कना चाहिये। ग्राहक सबसे ऊपर है...'

'आप तो न जाने क्या-क्या बोले चली जा रही हैं।...'

'मैंने तो आपको बस एक बात बताई।...ज़माना बदल गया है आंटी।...सँभल कर रहियेगा। इनका भी ठीक से ख़्याल रखिये।...ये जो भी कह रहे हैं, उसे भी ठीक से सुनिये और इनके कहे को समझिये भी।...हो सकता है कि अंकल ही सही कह रहे हों।'

बुढ़िया घबराकर उस औरत से तनिक दूर खिसक गई।

उसने साथ बैठी औरत को घूरकर देखा।

यह औरत अभी कैसी पागलों जैसी बातें कर रही थी!...कहीं ये खुद ही तो यहाँ इलाज के लिये नहीं लाई गई है? पागलखाने में यह फर्क करना कभी-कभी कठिन हो जाता है कि यह जो सामने अभी आपसे मिल रहा है, वह पागल है या पागल का तीमारदार, या फिर पागलखाने का कोई कर्मचारी?

इधर औरत के साथ बैठा बच्चा बुढ़िया को घूर रहा है।

बच्चा बुढ़िया को देखकर ऐसे खुलकर मुस्कुराया मानो उसके मन की बात जान गया हो! फिर वह बच्चा हँसने लगा।

औरत ने बच्चे की पीठ पर हाथ रखकर समझाया, 'बेटा, ऐसे नहीं हँसते।...सब डिस्टर्ब होते हैं।...'

पर बच्चा हँसता ही रहा।

उधर बूढ़ा एकदम चुपचाप बैठा है।

बच्चा बुढ़िया की तरफ देखकर हँसे जा रहा है। बुढ़िया असहज होकर आले में धरी भगवान् की मूर्ति को ताकने लगी।

भगवान् बेवज़ह मुस्कुरा रहा है।...शायद यही वह समय था जब भगवान् भी बाज़ार के साथ हो गया था।...मानो, इसी में उसकी भलाई भी थी।

❒❒❒

ए-40, अलकापुरी, भोपाल
म.प्र. 462024
मोबाइल : 9425604103
ईमेल: gyanchaturvedibpl@gmail.com

संस्मरण आख्यान

होता है शबोरोज़ तमाशा मिरे आगे (3)

सुशील सिद्धार्थ

मेरे संस्मरण लेखन के कुछ अंश कभी कभी फेसबुक पर जारी होते रहते हैं। वहाँ समानधर्मा लेखकों /पाठकों की राय भी मिलती रहती है। उनमें से कुछ चुनिंदा बातें यहाँ पेश हैं।

अतुल चतुर्वेदी– 'बहुत दमदार तरीके से और बिना लागलपेट के लिखा है। इतना ईमानदार व्यंग्यकारों को होना ही पड़ेगा। मुझे संबोधन के लिए विष्णु नागर जी पर लिखा अपना संस्मरण याद आ गया। व्यंग्य की छटा भी यहाँ काबिले तारीफ है। जारी रखिये। यूँ ही धुंआधार, बार –बार। जारी रखिये। अलग हटकर काम कर रहे हैं। हृदय से शुभकामनाएँ।'

निर्मल गुप्त – 'त्वचा इस बार भी छिलेगी। इस बार संस्मरण के कोने फिर धारदार हैं। मेरी चिंता निराधार नहीं है। मैं संस्मरण की बात कर रहा हूँ, कोई इसे बॉडी लोशन का विज्ञापन न समझे, सो खुलासा किया। ग़ालिब ने कहा, मैं भावानुवाद करता हूँ, वाकई ज़िंदगी बच्चों के खेलने का मैदान है। बस अब बदलाव यह हुआ है कि खेलने वाले खेलते नहीं, एक दूसरे से मुँह चुराते हैं। संस्मरण बर्दाश्त नहीं कर पाते।'

हरीशकुमार सिंह– 'ज्ञान जी, प्रेमजी और अब सुरेशकांत जी भी। सुरेश जी को भी जाना आपके जरिये। शानदार चल रहा। रोचकता और व्यंग्य से भरपूर। जारी रहे....।'

कैलाश मंडलेकर– 'आपके पास संस्मरण की भाषा भी है जैसे व्यंग्य की भाषा है, मैंने महसूस किया कि व्यंग्यकार अपेक्षाकृत बेहतर संस्मरणकार हो सकते हैं, कि नहीं ?'

सुरेशकांत– 'बहुत बढ़िया। थोड़े लिखे को बहुत न समझते हुए अगले अंश का इंतज़ार।'

विवेक मिश्र – 'ज़बरदस्त धार है ... आप जो कहना चाहते हैं कह डालते हैं, संस्मरण लेखक के लिए यह बड़ी ताक़त है। वरना संस्मरण लिखने में या तो विषय की 'संस्तुति' हो जाती है या 'मरण'... हो जाता है।'

बिपिन विक्रम सिंह– 'अब ज्ञान जी को पढ़ने का सही नज़रिया मिला। समझने में आसानी होगी। हार्दिक आभार आपका सर।'

सुमन उपाध्याय– 'शब्दश: सटीक बातें। और कुछ हो न हो व्यंग्य सीखने की चाह तो ज़रूर पैदा हो गयी है। क्योंकि कुछ कह कर भी बचे रहने की यही राह रह गयी है। आभार।'

शशिकांत सिंह– 'यह सही है कि अनेक समसामयिक विसंगतियाँ ऐसी हैं जिनसे लेखक दो चार तो हो रहा है लेकिन टकराने का साहस नहीं रखता। तात्कालिकता का मोह भी उसके मन में अधिक है। आपका इशारा बिल्कुल साफ है। आप वरिष्ठ लेखक समय रहते व्यंग्य लेखकों के सतहीपने पर चोट कर रहे हैं। व्यंग्य का भला होगा ही।'

अब आगे––

****

इस संस्मरण माला में कोशिश है कि ज्ञान चतुर्वेदी का समय भी दिख सके। समय दिखेगा तो बहुतेरे आनंददायक चेहरे भी लौकने लगते हैं।

ऐसे ही कुछ पहुँचे हुए लोगों का सिलसिला मेरे एक संवाद में आया था––––

अ : आज मूड में हूँ। कुछ पहुँची बातें पूछिए।

आ : पहुँची बातें क्या होती हैं, समझा दीजिए।

अ : जो बातें कही जाएँ...पर कही न जाएँ, सुनी जाएँ...पर सुनी न जाएँ। समझी जाएँ...पर समझी न जाएँ। इनका संबंध पहुँचे हुए लोगों से होता है।

आ: पहुँचे हुए लोगों को कैसे पहचानते हैं आप।

अ : जो हर जगह पहुँचे रहते हों, फिर भी कहीं न पहुँचते हों। जिनके दिमाग साजिश, जिनके हाथ मल उछाल, जिनकी आँखें दोष दर्शन, जिनकी जीभ निंदा निर्वचन, जिनके मुँह मैं–मैं वाद तक ही पहुँचते हों, वे पहुँचे हुए लोग होते हैं। वे भी पहुँचे हुए लोग होते हैं जो हर किसी की बात पर चकाचक भकाभक लकालक टाइप का लिखते रहते हैं। और पूछो।

आ : और!

अ: वे पहुँचों में पहुँचे माने जा सकते हैं जो पहुँचा पकड़ कर बाँह गह लें। ऐसा गह लें कि अगले की छाती दह जाए। वह कह न पाए। बस रह रह कर बद्दुआ देता रहे। वह भी पहुँचा होता है जो भरी सभा में किसी पिता तुल्य विद्वान के भाषण के बीच में टोकता रहता है। वे भी ऐसे ही हैं जो टोकने की सुपारी देते हैं। सुपारी लेने और देने वाले को संतोष रहता है कि चलो यहाँ तक तो पहुँचे। और पूछो।

आ: मैं व्यंग्य पर कुछ बोलने की हालत तक पहुँच गया हूँ। व्यंग्य कौन लिख सकता है, मैं इस पर भाषण देना चाहता हूँ। कुछ कहिए।

अ : वे व्यंग्य लिख सकते हैं...जो कुछ भी न लिख सकते हों। जिनका हाथ पटरे के नीचे दबा हो। जिनकी टाँग पर पाँच कुंटल का बोरा धरा हो। जिनकी आँखें उठ आई हों। जो पीड़ा से पीड़ित हों।

दुख से दुखी हों।

आ : ग़ज़ब।

अ : यह अजब है कि जिसका सिर पैर है उसे ही व्यंग्य माना जा रहा है। यह हालत ठीक नहीं। बेसिर पैर का लेखन ही दूसरों को अबे तबे कहने की योग्यता देता है। बेसिर पैर वालों यानी दिव्यांगों को ही योग्य संपादक संयोजक का नाम देता है। और उसकी किताबों की बेसिर पैर की भूमिकाएँ लिखता रहता है।

आ : आप दस्तावेज़ी बातें कर रहे हैं।

अ : व्यंग्य जीवन का दस्तावेज़ है, इसे वही लिख सकता है जिसके पास मेज़ भी न हो।

आ : ये आप कैसी परिभाषाएँ दे रहे हैं!

अ : अभी कहाँ। कुछ और सुनो। जिसके तलवार घुसी हो, जो घर फूँकै आपना, जो मूड़ मुड़ाय होय संन्यासी, जो मुँह ऊपर कर रोता हो, जो....

आ: ये कैसी योग्यताएँ हैं!

अ: दूसरे लोग कह रहे हैं तो किसी को आपत्ति नहीं है। अब मैं कह रहा हूँ तो तुम कैसी-कैसी कर रहे हो! याद रखो, सबसे ज़रूरी। व्यंग्य लिखने से पहले उनसे नो आब्जेक्शन सर्टीफिकेट लेना होता है।

आ: वे कौन हैं?

अ: वे पहुँचे हुए हैं।

....तो ऐसे पहुँचे हुए समय में यह सब लिखा जा रहा है। लिखते हुए भावनाओं, तथ्यों की सावधानी तो है, मगर दीगर सावधानियों पर ध्यान नहीं जा रहा। इस बात की ओर जब एक काबिल मनुष्य ने सावधान किया तो मैं कुछ दिनों तक सावधान की मुद्रा में खड़ा रहा। काबिल जी इतने दयालु हैं कि मुझ पर विशेष कृपालु रहते हैं। अनेक लोगों को फ़ोन करके सावधान करते रहते हैं। जैसे, वरिष्ठ व्यंग्यकार सुरेशकांत पर दयालु हुए। प्रपंच के हथियार बनाने वाली फैक्ट्री से कुछ हथियार निकाले। फिर उनको फ़ोन कर कहा कि सावधान रहिएगा। आपका नुकसान हो सकता है। आपका यह हो सकता है। वह हो सकता है। ...सुरेशकांत समझ ही न पाएँ कि यार मेरा ये ये भी हो सकता है। सुरेशकांत यह भी न समझ पाएँ कि मेरा जितना हो चुका है उससे अधिक क्या होगा!!

सुरेशकांत व्यंग्य के महामुनि हैं। उनको

परवाह नहीं रहती। उन्होंने कहा, यार मेरा जो होता है हो जाने दो। काबिल जी दुखी हुए कि इसे सावधान न कर सका।

...कुछ लोग इतने सावधान होते हैं कि धीरे धीरे अंतर्ध्यान हो जाते हैं। इसके बाद...कुछ या बहुत दिनों बाद किसी पुरस्कारातुर सूची, कमेटी, सेटायर टूरिज़्म वग़ैरह में प्रकट होते हैं। खेद है कि मैं इतना सावधान नहीं हूँ। रहना होगा। या रहना चाहिए। कारण यह कि, व्यंग्य में यह समय जो ज्ञान चतुर्वेदी का है

वह ख़ासे अज्ञान से भी भरा है। यह मुझे पता है। समय का आख्यान लिखना आसान भी नहीं होता। व्यंग्य का समय!!

...तो विश्व पुस्तक मेला में ज्ञान चतुर्वेदी के आते ही पूरा किताबघर प्रकाशन प्रसन्न हो गया था। स्टाल पर ही लोकार्पण का इंतेज़ाम था। उनके आते ही और एक ओर बैठते ही उनके पास छोटी सी भीड़ इकट्ठा हो गयी। बाकी स्टाल पर तो पहले से जमावड़ा था। कवि मदन कश्यप, जितेंद्र श्रीवास्तव, कथाकार विवेक मिश्र, संतोष त्रिवेदी और कुछ विशिष्ट रचनाकार भी मौजूद थे। लोकार्पण का संचालन करते हुए मैंने जो कहा उसकी एक वीडियो क्लिप फेसबुक पर डाली थी। कुछ ऐसा कहा था मैंने कि ज्ञान जी को पढ़कर नए व्यंग्यकार तो सीख ही सकते हैं, ख़ुद वे व्यंग्यकार भी लाभ उठा सकते हैं जो उनकी पीढ़ी के हैं। और सहपाठी होने से, मुहल्ले का होने से, पड़ोसी होने से, पीढ़ी का होने से ही कोई परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल या ज्ञान चतुर्वेदी नहीं बन जाता। बनने के लिए लिखना होता है। ...आदि आदि।

मदन कश्यप, जितेंद्र श्रीवास्तव ने कविता और व्यंग्य की भाषा की विवेचना की। उन्होंने कहा कि व्यापक हिंदी समाज में आज का व्यंग्य ज्ञान जी के नाते ही जाना जाता है। कथाकार विवेक मिश्र ने बेहद सधे शब्दों में ज्ञानजी की विशेषताओं पर बात की।

ज्ञान चतुर्वेदी ने इस मौके पर अनौपचारिक तरीके से बेहद ज़रूरी बातें कहीं। कहा, 'ख़राब लिखना कोई गुनाह नहीं है। जिससे जो सधेगा वही लिखेगा। गुनाह है अपने ख़राब लिखे को पूरी साहित्य बिरादरी में बढ़िया साबित करने की कोशिश। न केवल कोशिश बल्कि साज़िश। अच्छा क्या है? व्यंग्य लेखन में भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, अजातशत्रु आदि के लेखन से भी अगर कोई नहीं समझ पा रहा कि अच्छा लेखन क्या होता है, तब उसे समझाया नहीं जा सकता। आपकी साज़िशों से यह संदेश भी जाता है कि ऐसे ही लेखन से काम चल जाएगा। यह दुखद है।'

उन्होंने कहा कि कुछ लोग कहते हैं, मैं कुछ बातें बार बार दुहराता हूँ। अरे भाई दुहराए जा रहा हूँ तो सुधर जाइए।

ज़ाहिर है, विश्व पुस्तक मेला में दिए गये इस वक्तव्य का बहुत असर पड़ा। मुझे ज्ञानजी के बोलने की शैली बहुत पसंद है। हालाँकि मैं बिल्कुल दूसरी तरह का वक्ता हूँ। देखिए अभी मुझे सहसा कुछेक वक्ताओं का ख़याल आ गया। जैसे लेखन की शैलियाँ होती हैं वैसे ही बोलने की भी होती हैं। उन शैलियों के महारथियों की याद आ गई। जितना अभी याद आया वह पाठकों से शेयर करना चाहता हूँ।

... अगर किसी ने सभा संगोष्ठी में लगातार समय खपाया होगा तो पाया होगा कि वक्ता भाँति-भाँति के होते हैं, जो बहसों में खपते रहते हैं। कुछ वक्ताओं को देखकर तो वक्त भी भाग खड़ा होता है। छात्र जीवन से अब तक की 'वक्तव्य यात्रा' में ऐसे विदेह वक्ताओं से कई बार वाणी योग सीखने का अवसर मिला है। इन ऋषियों को नमन करता हूँ। इनकी चर्चा करते हुए विदेह होना नहीं चाहता।

मुझे यह सौभाग्य मिला है कि हजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर, नामवरसिंह, श्रीलाल शुक्ल, विष्णुकांत शास्त्री, विश्वनाथ त्रिपाठी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, काशीनाथ सिंह, अखिलेश जैसे मनीषियों को सुना व

गुना। व्यंग्य में श्रीलाल जी का नाम तो लिया ही है। उनके अलावा कुछ नाम और हैं। गोपाल चतुर्वेदी शानदार बोलते हैं। उन्हें विषय स्पष्ट रहता है। सधी भाषा और श्रोताओं को साधने का हुनर उनके पास है।

नरेन्द्र कोहली बहुत अच्छे वक्ता है। चीज़ों के बारे में उनकी समझ साफ़ है। उनसे असहमत हुआ जा सकता है, मगर उनमें वैचारिक छल नहीं है। व्यंग्य में उन्होंने कुछ विशिष्ट अवधारणाओं को विकसित किया है। उनका लोगों पर गहरा असर है। लेखकीय स्वाभिमान के साथ बोलते हैं। और कुछेक बार लोगों की बोलती भी बंद कर देते हैं।

सुरेशकांत को दो तीन बार सुना है। उनसे होती रहती बातचीत से कह सकता हूँ कि वे अपने अध्ययन का पूरा लाभ बोलने में लेते हैं।

प्रेम जनमेजय एक समर्पित अध्यापक के अनुशासन से बोलते हैं। बोलते हुए चुटकी लेते हैं, मगर पहले 'चुटकी' से माफ़ी माँग लेते हैं। दरस्ल, पौराणिक तरीके से सोचें तो व्यंग्य में दो कोटि के वक्ता हैं।

प्रेम जनमेजय व्यंग्य के आत्मार्पित मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। ज्ञान चतुर्वेदी व्यंग्य के लीला पुरुषोत्तम हैं। लिहाज़ा, प्रेम जी की वाणी रूपी सीता अनेक तरह की लक्ष्मण रेखाओं में घिरी रहती है। उस सीता ने तो रेखा पार कर ली थी। प्रेम जी की सीता घेरे में ही रहती है। इस की क्षतिपूर्ति उन्होंने सीता अपहरण नाटक लिखकर की है। उनको सुनना व्यवस्थित तौर पर किसी विषय का विश्लेषण सुनना है। उनके प्रेम में 'योगक्षेम' भी रहता है। नई पीढ़ी का जितना लालन पालन उन्होंने किया है, वह दुर्लभ उदाहरण है। अतिरिक्त लालन पालन के कारण कुछ लाल बिगड़ भी गए हैं, यह अलग बात है। अपने वक्तव्यों में वे इनकी सफ़ाई भी देते रहते हैं। वे कभी किसी का जी नहीं दुखाते। भले ही उनपर कोई जा या बेजा हमला क्यों न कर दे। या कर चुका हो। ऐसा वाणी संतुलन बहुत अभ्यास से आता है। संतुलन केवल अभ्यास से ही नहीं आता। परंपरा का आदर और नई पीढ़ी के प्रति स्नेह भी उनके मन में है।

मेरे शुभचिंतक व वरिष्ठ व्यंग्यकार हरीश नवल व्यंग्य जगत् के सुलभ, सहज, बहु उपयोगी अध्यक्ष हैं। इससे कम पर वे सभागार में हों तो सभागार लज्जित होता रहता है। इसलिए वे अध्यक्ष की तरह ही बोलते हैं। वे रहते भी अध्यक्ष की तरह हैं। उनमें सावधान वीतरागिता और सतर्क सरलता का सहज मेल है। वे सहज अध्यक्ष-वक्ता हैं। अध्यक्ष के बोलने पर शरद जोशी, ज्ञान चतुर्वेदी ने ग़ज़ब टाइप का लिखा है। वहाँ अध्यक्षीय बोलवचन की विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है। वे प्रवाहपूर्ण तरीके से बोलते हैं। प्रवाहित पानी को पता नहीं रहता कि कब वह दाएँ निकल लेगा, कब बाएँ मुड़ जाएगा। उनका प्रवाहपूर्ण वक्तव्य उनके लिए आसानियाँ लाता है। वे साहित्य को अध्यात्म, अध्यात्म को खेल, खेल को सिनेमा, सिनेमा को सुभाषित की ओर ले जा सकते हैं। वे श्रोताओं की अपेक्षाओं पर खरे उतरते हैं। जो श्रोता उनको दो तीन बार सुन चुका होता है, वह बताने लगता है कि इस वाक्य के बाद हरीश जी कौन सा वाक्य बोलेंगे। वे दृढ़ प्रतिज्ञ वक्ता हैं। जिन उदाहरणों या संदर्भों पर वे वर्षों पूर्व मोहित हो चुके हैं, उनको आज तक दुहराते हैं। जैसे आगे उठता पैर और अपनी जगह रुका पैर वाला।

एक कहानी याद आई। कहते हैं कि एक मंत्री को बहुत भाषण देना होता था। परेशान रहते थे। उनका अनुचर उनके साथ हर जगह जाता था। एक दिन मंत्री महोदय ने अनुचर से कहा कि मैं थक जाता हूँ। यहाँ बोलो वहाँ बोलो। मना कर नहीं पाता किसी को। तब अनुचर ने श्रद्धा से कहा कि सर, अगर संभव हो तो कहीं कहीं मुझे भेज दिया करो। आपके साथ रहकर आपका भाषण मुझे पूरी तरह रट गया है। वर्षों से आप थोड़ा मोड़ा अदल बदल कर एक ही बात बोल रहे हो। मैं भी अदल बदल कर चल निकलूँगा।

....यह संभावना बनती है कि अगर किसी सीज़न या सहालग में हरीश जी की व्यस्तता बढ़ जाए तो वे अपने उन शिष्यों की मदद ले सकते हैं जिन्हें उन्होंने बहुत पहले क्लास रूम में पढ़ाया था। उनको भाषण रटा ही होगा। हरीश जी सिद्धों नाथों की 'संझा भाखा' या संध्याभाषा के विशेषज्ञ हैं। जो बोलते हैं उसका यह भी मतलब निकल सकता है। वह भी मतलब तो निकल ही रहा है। जैसे, अतुल चतुर्वेदी और निर्मल गुप्त के संग्रहों के लोकार्पण के अवसर पर उन्होंने कुछ मंचस्थ लोगों की प्रत्यक्ष तारीफ़ की। मैं भी वहीं स्थ था। उनको ध्यान आया कि इनको भी स्थापित करना है। तो, मेरी ओर देखकर कहा, 'उसके बारे में क्या कहूँ, जो पहले ही सिद्धार्थ हो चुका हो।' यह सुनकर मेरे सिद्धार्थपने में जो कमी रह गई थी वह भी पूरी हो गई। इस संझाभाषा के बाद कोई भी सिर्फ़ संध्यावंदन के लायक ही बचता है। हरीश जी आकर्षक व्यक्तित्व वाले हैं तो उसका असर शब्दों पर भी दिखता है। उनके निकट आकर भाव, विचार, अभिव्यक्ति की अनेक विसंगतियाँ और विडंबनाएँ सुंदर दिखने लगती हैं। उनका फंडा साफ़ है। मंच से किसका नाम लेना है किसका नहीं लेना। यह अलग बात है कि जिन दो व्यंग्य लेखकों (??) का नाम वे प्यार और दायित्व की तरह लेते हैं उनका कोई नामलेवा व्यंग्य में नहीं है। ...इसलिए यदि उन्होंने असावधानी वश कभी किसी अन्य की तारीफ़ कर भी दी तो कुछ ही देर बाद उनको साक्षरा अपार्टमेंट का इलाका और कोई कर्कटक या दमनक टाइप का अपना शिष्य याद आ जाता है।

एक उदाहरण देता हूँ। वागीश सारस्वत ने गांधी शांति प्रतिष्ठान में व्यंग्य का कार्यक्रम रखा था। विषय था--व्यंग्य: मूल्यांकन की समस्याएँ। हरीश जी कुछ बेगाने व्यंग्यकारों की तारीफ़ सहसा करने लगे। हमलोग चकित। तभी उनको सहसा ध्यान आया और वे सहसा बदल गए। फिर उन्होंने विश्व प्रसिद्ध किंतु परंतु लेकिन फिर भी जैसे शब्दों का सहारा लिया। वे इस विचलन को सँभाल ले गए यह भी एक कौशल है।

एक और सज्जन हैं जो वर्षों से एक ही व्यंग्य एक ही शैली में लिख रहे हैं। वे किसी भी विषय पर, कभी भी, कहीं भी, कैसे भी बोल सकते हैं। हास्य की अगरबत्ती और रोष का लोबान सुलगाकर माहौल बनाते हैं। 'पटक कर मारूँगा' टाइप की उबल उबल आती आँखों से इधर-उधर देखते हैं। गहरी साँस भरते हैं। फिर यथोचित स्थानों से उसे विभक्त करते हुए ख़ाली करते हैं। फिर कुछ आज़मूदा अदाएँ

नए सिरे से आज़माते हैं। कभी अफ़वाह थी कि उनकी इन महिलालु अदाओं पर फ़िदा होकर एकाध पुरुषालु महिलाएँ करवा चौथ का व्रत करने लगी हैं। फिर कुछ सूत्रों का जाप करते हैं-- 'अब मैं कुछ तीखी बातें कहूँगा', 'मैंने सबको पढ़ रखा है', 'विसंगति विसंगति है विडंबना विडंबना है।' आदि आदि। ...श्रोता इनको माफ़ी देते हुए सुनते रहते हैं। अब इधर वे बदल गए हों तो मुझे पता नहीं।

आलोक पुराणिक को सुनना श्री श्री रविशंकर या किसी परम संत को सुनना है। वे सचमुच बहुत सरल व्यक्ति है। अपने काम से काम रखने वाले। छल कपट आदि से बहुत दूर। यह सच्चाई उनके बोलने में भी दिखाई देती है।

एक और हैं जो सज्जन और असज्जन के बीच की कोटि के हैं। उनके बारे में उन्होंने और उनके उन्होंने यह फैला रखा है कि अहा। अहा तो है ही, वहा भी है। यानी कहा यह कि वे जब बोलते हैं तो फूल झरते हैं। फ़राज़ ने महबूबा के लिए कहा था--

'सुना है बोले तो बातों से फूल झरते हैं
ये बात है तो चलो बात करके देखते हैं।'

लोग यह बात इनके लिए कहते हैं। मेरा और व्यंग्य जगत् का सौभाग्य है कि कई बार इनको झड़ते हुए देखा गया है।

फूलों का झरना एक अद्‌भुत घटना है।

टपकना, गिरते हैं, चू पड़ते हैं, बरसते हैं, झरते हैं।

अपने इनका मामला सबसे जुदा है। इनके फूल लद्द-लद्द जबान से रद्द-रद्द होते हैं।

....मगर ज्ञान चतुर्वेदी सबसे जुदा हैं। सुसंप्रेषणीय, स्पष्ट, सार्थक और प्रेरणाप्रद -- ज्ञान जी के वक्तव्य के ये कुछ लक्षण हैं। वे जिन बातों से सहमत होते हैं उनको पूरी शक्ति से रेखांकित करते हैं। जिनसे असहमत होते हैं उनको पूरी विट और वाग्विदग्ध भाषा शैली के साथ काटते हैं। इससे भी हमें सीखना चाहिए। आज के प्राय:असहिष्णु, तात्कालिक, विमूढ़, विक्षिप्त समय में तो इसकी बहुत ज़रूरत है। हाँ, कई बार वे सामान्य बातचीत से लेकर भाषण तक में ऐसी व्यंजना का इस्तेमाल करते हैं कि लोग गच्चा खा जाते हैं। पिछले दिनों एक महत्त्वाकांक्षी साहब ने मुझसे कहा, 'जब मैंने ज्ञानजी को बताया कि इतने सारे श्रेष्ठ व्यंग्य उपन्यास लिखे गए हैं तो उन्होंने हैरत से कहा कि मुझे तो पता ही नहीं था। आपसे जानकर मेरी जानकारी बढ़ी।'

अब इन मूढ़मति को कौन बताए कि मज़ा लेने की यह ज्ञान शैली है। यह शैली वरिष्ठ व्यंग्यकार आदरणीय अंजनी चौहान में तो ग़ज़ब है। अंजनी चौहान से बात करना उनको सुनना व्यंग्य को सीखने जैसा है।

जीवन हो या साहित्य; भाषा, संवादशैली और स्वर से पता चल जाता है कि इसमें आत्मीयता, समझदारी, मूढ़ता, अहम्मन्यता का अनुपात क्या है। इसलिए आलोचना का तो हर जगह स्वागत है।

ज्ञानजी किसी के लेखन पर जब बोलते हैं तो उस लेखन को अपना बनाकर बोलते हैं कि इसमें यह कमी रह गई। आलोचना करते हैं तो एकदम आनंद भाव से। कोई दुर्भाव नहीं। उस समय उनके मन में कहीं यह नहीं होता कि आज मौका मिला है, सारा अगला पिछला चुकता कर लेता हूँ। यह अविस्मरणीय बात है।

देखिए, कुछेक अन्य लोग भी आलोचना करते दिखना चाहते हैं। ठीक है, कोई भी किसी के कहे या लिखे पर टिप्पणी कर सकता है। मगर हर आचरण का एक तरीका होता है। साहित्य में बात साहित्य की तरह से होगी। साहित्य पर बात करना किसी नेता के चिरकुट काम पर जारी चैनलीय बहस से बिलकुल जुदा होता है। इस सीधी बात को कुछ लोग नहीं समझते। कुछ लोग तो कुछ भी समझने के लायक नहीं होते। ये कुछ लोग इतने जजमेंटल होते हैं कि मेंटल हो जाते हैं। ये दूसरों को प्रमाणपत्र बाँटते घूमते हैं। होना यह चाहिए कि अगर कोई दिक्कत है तो बहस कर ली जाए। बहस की तरह। साहित्य की बहसें तो बहुत दूर तक पहुँची हैं मगर उसके लिए अध्ययन और विवेक चाहिए। साहित्य और सियासत की बहसों में मौलिक अंतर है। जो यह अंतर नहीं समझते वे एक रजिस्टर उचित स्थान पर खोंस कर चलते हैं। लेखकों के आचरण और चरित्र के चित्र बनाते रहते हैं। ये मानव बम सरीखे लोग बहुत दरिद्र और दयनीय होते हैं। चित्रकार कहानीकार प्रभु जोशी ने कहा ही है, किसी ऐसे बम के लिए--'वैसे चिम्पांजी की बौखलाहट की स्थिति के बारे में, यह एक प्रामाणिक अध्ययन है कि वह, जब स्वयं को विपक्षी के समक्ष असहाय पाता है तो वह विपक्षी पर, अपनी विष्ठा ले-लेकर फेंकने लगता है। आप को अगर किसी की भाषाभिव्यक्ति के भीतर इसी वृत्ति के लक्षण दिखाई दें, तो मान लीजिये कि वह उसी का क्लोन है।'

ये क्लोन चाहें तो ख़ुद को अधिकाधिक मनुष्य बना सकते हैं। ज्ञानजी हर तरह से हमें बहुत कुछ सिखाते हैं। जैसे, किसी किताब के बारे में वे चंद पृष्ठ पढ़कर ही उसके स्तर वग़ैरह को जान लेते हैं। हमारे जैसे लोग ख़राब किताबों को भी इतना अच्छी तरह पढ़ते हैं कि अच्छी किताबों को पढ़ने के लिए समय नहीं मिल पाता। हम लोगों की हालत पर यह उदाहरण सही बैठता है।

अ : सुशील जी, उनकी किताब पढ़ी? पढ़ लो यार। वे आफ्टर आल वरिष्ठ व्यंग्यकार हैं।

सुशील : जी, उनका एक संग्रह तो इधर आया है।

अ : संग्रह को ही किताब कहते हैं।

सुशील : आप तो भाषा मर्मज्ञ हैं। संग्रह का मतलब तो इकट्ठा करना जैसा भी कुछ होता है। पढ़ना भी संग्रह करना होता है।

अ : यार, उदाहरण दो।

सुशील : तुलसीदास ने लिखा है...
जानि गरल जे संग्रह करहीं।
कहहु उमा ते काहे न मरहीं॥

अ : देखो वह एक वरिष्ठ व्यंग्यकार का संग्रह है। उसमें तरल गरल हो तब भी उसे किताब मान लो।

सुशील : मान लिया।

अ : मान लिया तो पढ़ डालो।

सुशील : एक बात बताइए। क्या केवल गरल संग्रह करने वाला ही मरता है?

अ : वह तो मरता ही है। वह भी मरता है जो गरल पी लेता है।

सुशील : तो आप मुझे गरलपान के लिए कह रहे हैं?

अ : (सोचते हुए) बात तो वाजिब है। लेकिन यार...

सुशील : लेकिन क्या?

अ : यार, मैंने तो आधा संग्रह पढ़ डाला

है !!!!!

ज्ञानजी अपने लेखन में बहुत मेहनत करते हैं। इतने बड़े रचनाकार होने के बावजूद कुछेक बार कहते हैं कि यार, मैंने ठीक से भाषा क्यों नहीं सीखी। वे 'सही भाषा' की तलाश में अपनी रचनाओं को कई-कई बार रचते हैं। एक रचनात्मक संशय उनमें बना रहता है। मुझे फ़ोन पर देर तक बताते रहते हैं कि सुशील, लिख तो दिया है पर मालूम नहीं कैसा बना होगा। अपने से पूछने और अपने पर सवाल उठाने की शक्ति कितनों में होती है ? वे बहुत बार कहते हैं कि, बारामासी एक ही बार में लिखकर दे दिया था। मुझे उसका एक ड्राफ़्ट और करना चाहिए था। ...इसीलिए वे ज्ञान चतुर्वेदी हैं।

वरना हस्बेहाल तो बहुत हैरानकुन है। इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है।

भाई सिद्धार्थ सिंह की फेसबुक वॉल पर यह चुटकुला दिखा था--

मरीज- डाक्टर साहब आपने पर्चे के पीछे जो दवा लिखी है वह पूरे शहर में कहीं न मिल रही।

डॉक्टर - अरे, वो तो मैं अपना पेन चलाकर चैक कर रहा था, दवाई तो पर्चे के आगे ही लिखी है।

....मैंने इसकी व्याख्या इस तरह की। मुझे ऐसा लगता है कि कुछ वरिष्ठ और कनिष्ठ लेखकों ने अभी तक काग़ज़ के पीछे अपने अपने पेन ही चेक किए हैं। फिर यही काग़ज़ छपने भेज दिए। छप गए। अख़बार व किताब दोनों में। काग़ज़ के आगे वे कभी लिख ही न सके। दवाई यानी असली रचनाएँ तो काग़ज़ के आगे अभी लिखी जानी हैं। इसीलिए ऐसे लेखकों की रचनाएँ समय के शहर में कहीं नहीं मिलतीं। कभी नहीं मिलतीं। ..और ऐसा कोई शहर नहीं जहाँ किताबें हों और ज्ञान चतुर्वेदी की किताब न हो।

शायद यही कारण है कि वे लेखक तो अच्छे हैं ही, अच्छे गुरु और गाइड भी हैं।

अब गुरु और गाइड का मामला भी आज कुछ कम दिलचस्प नहीं है।

व्यंग्य लेखन में ही नहीं, यह समस्या पूरे जीवन में है कि किससे गाइड हों। मारग दिखाने वाला भी गुस्से में कि ससुरे मेरा कहा न माना...मेरे राकेट पर न बैठा। अब

प्राय: वरिष्ठ और अक्सर कनिष्ठ का नाता बहुधा राकेट लांचर और राकेट का हो गया है। यह एक स्थाई तनाव और ज़रूरी मनोरंजन है। इससे शक्ति संतुलन होता है। इससे रागदरबारी सधता है। यानी यदि कोई दिशानिर्देश करने की मिलकियत में आ चुका है तो वह कई बार दिशाओं को अपने घर की तरफ़ या अपने चरणों की ओर मोड़ देता है। वह चाहता है कि अधिकाधिक लोग उससे ही गाइडलाइन लेकर तय करें कि किस किस को लाइन पर लाना है, लाइन से लगाना है, किसकी छोटी लाइन चेक करनी है, किसकी बड़ी लाइन ब्रॉडगेज में तब्दील करनी है। संतुलन झटाझट बदलता रहता है। इसलिए दिशानिर्देश बदलते रहते हैं। आदेश देने और लेने वाले को टच में रहना होता है कि निर्देश का अपडेट क्या है। इसे आप एक संवाद से समझ सकते हैं-

हेल्लो हेल्लो उर्फ़ गुदे शिदे संवाद

'हेल्लो हेल्लोजी शिष्यदेव'

'बोल्लो बोल्लोजी गुरुदेव'

'बोल्लो शिदे'

'हेल्लो गुदे'

'हूँ'

'हाँ'

'और'

'कुछ नहीं'

'कुछ तो'

'कुछ तो बस इतना कि आपने जो बताया था उसकी तैयारी कर दी है। कल तक उसकी ऐसी तैसी हो जाएगी'

'शिदे, पक्का'

'गुदे, पक्के में पक्का'

'अमाँ पूछ तो लिया करो'

'पूछना कैसा। कहा तो आपने ही था।'

'जब कहा था तब कहा था।'

'जब और तब ठीक से समझ में नहीं आया।'

'यही समझ जाओगे तो तुम गुदे हो जाओगे'

'और आप शिदे'

'हुम्म'

'हम्म'

'यार फिर भी फाइनली पूछ लिया करो।'

'फाइनली क्या होता है सर'

'मतलब फाइनली बदनामी को फाइनली फैलाना शुरू होने के पहले वाले अंतिम क्षण तक का अपडेट ले लिया करो'

'अपडेट क्या होता है।'

'गधा है का। अरे गधे को भी पता होगा अपडेट का है'

'गुदे, अपडेट क्या होता है'

'शिदे, मैं क्या जानूँ ससुर क्या होता है। किसी से सुना तो यहाँ बमक दिया। हमारे दूसरों से रिश्ते हरपल बदलते रहते हैं। राय भी बदलती है। मोबाइल चालू रखा करो। हो सकता है कि दो मिनट पहले किसी की निंदा का आदेश जारी हुआ हो। और हो सकता है पाँच मिनट बाद उसकी तारीफ़ का ठेका मिल जाए।'

'मैं यही करता हूँ। समूह, फेसबुक वगैरह पर लाइक और टिप्पणी का खुदरा व्यापार भी आपके आदेश पर चलता है। याद करिए, सोमवार की शाम तक आपका आदेश मिला था। एसटीडी कॉल पर भी पैंतालिस मिनट आप मुतवातिर बोले। ऐसा मुतवातिर कि मैं मूतने भी नहीं जा सका। अब फाइनली गाइड करिए।'

...ऐसे फाइनली माहौल में ज्ञानजी सचमुच एक महान गुरु और गाइड हैं। वे हर बार सिखाते हैं कि रचना के साथ साथ जीवन को कैसे पढ़ो। यह कला हरेक को नहीं आती। वे एक अपारंपरिक गुरु हैं। कहते नहीं कि सिखा रहा हूँ। मगर हर लेख, हर उपन्यास, हर संवाद से सिखाते हैं। यह भी कि 'जीवनीय' कैसे हुआ जाए। यह पठनीय होने से भी बड़ी समस्या है।

वैसे पठनीयता का संकट केवल रचना, आलोचना के संदर्भ में ही नहीं है। सामान्य सी फेसबुकीय पोस्ट जो ज़रा सी वक्र होती है उसे भी समझने में लोगों को दिक्कत पेश आती है। पढ़ने में उलझन होती है।

एक उदाहरण देता हूँ। एक मित्र ने पंच चयन करते हुए मेरी रचनाओं से भी कुछ

पंच चुने। मौसम मस्ती का था। मैंने मौसम की मस्ती में डूबकर पोस्ट लगाई। साथ में श्रीलाल शुक्ल का एक चित्र पेस्ट किया। जिसमें वे लैपटॉप पर कुछ देख रहे हैं। मैंने चयन और चित्र के बीच लंतरानी बनाई कि यह चित्र ऐतिहासिक है। श्रीलाल शुक्ल को लैपटॉप पर यह पंचसंग्रह दिखाया गया था। चित्र गवाह है कि श्रीलाल जी भावुक हो गये थे। कहा था, 'सुशील सिद्धार्थ ने तो मुझे भी पीछे छोड़ दिया है।' जिन लेखों से पंच लिए हैं वे सब श्रीलाल जी के जीवित रहते लिखे जा चुके थे। आलोक पुराणिक, अतुल चतुर्वेदी, निर्मल गुप्त आदि तो शुक्ल जी के साथ उठते बैठते थे। बहुत शुक्रिया। मेरा लिखा आपने पढ़ा और उसमें से चुना। श्रीलाल जी को दिखाया भी। परसाई ने भी कहा था कि ये पंच ग़ज़ब हैं।' यह थी लंतरानी।

आश्चर्य तब हुआ जब मेरे एक वरिष्ठ व्यंग्यकार ने मेरी लंतरानी को अभिधा में समझ कर 'समकालीन व्यंग्य का विद्रूप' शीर्षक से एक पोस्ट लगा दी। मैं दहशत में आ गया। और मैंने उसमें व्याख्या करने वाले कुछ वाक्य जोड़े।

सुरेशकांत ने इस बात को समझा। उन्होंने अगले दिन अपनी एक लंबी पोस्ट में वरिष्ठ व्यंग्यकार के लिए यह लिखा -- ''आपके द्वारा उल्लिखित 'समकालीन व्यंग्य की विद्रूपता' यह है, या मस्ती के उपलक्ष्य में सुशील सिद्धार्थ द्वारा प्रस्तुत श्रीलाल शुक्ल प्रकरण?''

मैंने उनका आभार व्यक्त किया--, 'मैंने कल एक स्टेटस को आनंद का रंग देकर पोस्ट किया था। आपने उसका निहितार्थ समझा, आपका शुक्रिया।'

'अनेकानेक गोष्ठी धावकों, कार्यक्रम लाभार्थियों, ओहो आहा कर्ताओं, चश्मा चढ़ावकों के बीच मैं ज्ञान चतुर्वेदी और सुरेश कांत जैसे कुछ लेखकों को बेहद ख़ास मानता हूँ।'

इसके उत्तर में सुरेश जी ने लिखा था- 'धन्यवाद सुशील जी। दुर्भाग्य से आज व्यंग्य-रचनाओं के आकार की ही तरह व्यंग्यकारों का दिल भी छोटा हो गया है।'

पहले तो होली पर हास्य-व्यंग्यकारों के साथ घटित कल्पित घटनाओं को लेकर रचनाएँ लिखी जाती थीं। 'धर्मयुग' जैसी

पत्रिकाएँ मज़े लेकर ऐसी रचनाएँ छापती थीं। केपी जैसों ने तो व्यंग्य-लेखन की शुरुआत ही ऐसी रचनाओं से की थी। आज दिल भी छोटा हो गया है और समझ भी। असल में दिल छोटा हुआ ही समझ छोटी हो जाने की वजह से है। यह इस दौर की एक बड़ी विसंगति है।'

प्रेम जनमेजय ने इसमें जोड़ा, 'सुशील जी आजकल राजनीति की तरह साहित्य में भी सहिष्णुता समाप्त हो रही है। अब साहित्य में भी तो राजनीति ... निश्छलता दुबक गई है और तेज़ाबी नज़रें संबंधों को छेड़ने को हथियार बन्द सैनिक सी हो रही हैं। मुझे याद है कि जनसत्ता में मंगलेश डबराल भाई और सारिका में नंदन जी और मुद्‌गल जी के आग्रह पर मैंने अनेक चुटीली रचनाएँ लिखीं।

भारती जी ने मुझसे परसाई जी को पद्मश्री मिलने पर लिखने को कहा तो मैंने लिखा कि पद्मश्री तो आ गई पर पद्मा नहीं आई। ऐसे ही जैनेंद्र, गिरिजा कुमार माथुर जी के घर डाले गए साहित्यिक छापों पर लिखा। सारिका में तो मैंने संपादकीय परिवार पर पिचकारी मारी थी जिस खिंचाई का सबने आनंद लिया।'

यह है समस्या। जीवन और लेखन की सहजता का आनंद लेने वाले दुर्लभ होते जा रहे हैं।

....तो विश्व पुस्तक मेला में ज्ञानजी ने अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी। किताबघर प्रकाशन के स्टाल पर कार्यक्रम पूरा होने के बाद वे अपने अन्य साथियों द्वारा घेर लिए गए।

(अगले अंक में जारी)

❑❑❑

किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली 110002,
मोबाइल 9868076182

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
-संपादक
shivna.prakashan@gmail.com

कथा–एकाग्र

विविध शैलियों का सुन्दर समन्वय

(अजय नावरिया की कहानी ''विखंडन'' के विशेष संदर्भ में)

नीलाक्षी फुकन
नार्थ केरोलिना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका

अजय नावरिया की कहानी ''विखंडन'' पढ़कर क्षण भर के लिए मैं सकपका गई। वैसे कहानी पढ़ने से पहले ही निश्चय कर लिया था कि आख़िर अजय नावरिया की कहानी है, लेखन शैली की प्रौढ़ता के साथ–साथ कथानक में युग की समस्या, परम्परागत विचार के खिलाफ आवाज़, मनस्तत्त्व का विवेचन, भावों के मूर्तिकरण के साथ–साथ भावनात्मक गुणों का तो संगम होगा ही और उसी मानसिकता तथा आंतरिकता से कहानी पढ़ने लग गई। जिस क्रम में अनेक पात्रों का परिचय कराया गया, घटनाओं का विवरण दिया गया, उसी क्रम में मैंने भी समझ की माला में फूल रूपी एक एक पात्र को तथा एक एक घटना को पिरोती चली गई। सबसे पहले यूनान शहर के होटल का वर्णन और साथ ही यूनान शहर की गली, बाज़ार के साथ एंगेला, इनीस, केलिस्ता जैसे पात्रों के चित्रण में मानों जादू भरा हुआ था। देव और केलिस्ता के दिलों की धड़कनों की साक्षी बन आनन्द लेती रही। लेकिन जैसे ही कहानी खत्म हुई समझ की जो माला शुरू से गाँठती गई थी उस माला में से एक एक फूल रूपी घटना तथा पात्र को सच्चाई की खोज में बाहर निकालती गई। सहसा कहानी को समझने के लिए मानो फ्लैशबैक प्रक्रिया में पीछे की तरफ चलती गई। हर एक क्षण, हर एक दृश्य, हर एक पात्र को फिर से छान–बीन करने लगी जैसे किसी हादसे के बाद पुलिस तहकिकात करती है। फिर मैंने कहानी के भिन्न खंडों को पुन: जोड़ने का सिद्धान्त किया। वैसे कहानी का प्रारम्भ यूनान के सराय के अंदर घटी अजीबोगरीब अनुभव के साथ हुआ। इसी स्थान पर एंगेला, होटल मेनेजर एदोनिस, सान्या जैसे पात्रों का परिचय कराया गया और साथ ही मुख्य पात्र देव का एथेंस, यूनान आने का मकसद भी बताया गया कि एथेन्स की 'सोसायटी ऑफ फिलोसोफिकल थॉटस' ने व्याख्यान देने के लिए, संस्था के खर्चे पर उसे आमंत्रित किया था। दूसरे हिस्से में, लेखक ने डरावनी और विस्मयकर घटनाओं को जोड़कर परिवेश को विस्म हैरत करने के साथ–साथ आनेवाली अजीबोगरीब हरकटों का आभास भी दिया। एंगेला द्वारा कही गई बातों से जैसे 'इनीस ने मुझे बताया था कि डेव अजीब आदमी है।' एक इशारा मिल गया कि देव की मन: स्थिति अचंभित है। लेखक ने इसी स्थान पर पाठक के समक्ष आत्माओं और रूहों के स्वरूप का चित्रण किया और यह भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि आत्माओं और रूहों को हम हर रूप में देख सकते हैं जिस रूप में देखना चाहते हैं। देव एक ऐसा व्यक्ति था जो जीवन से पार के जीवन में विश्वास करता था और अंत में ऐसा ही एक स्वरूप उसके मन–मस्तिष्क में उभर आया जो केलिस्ता के नाम से उसकी जहन में बैठ गया। केलिस्ता का ज़िक्र होते ही यह भी स्पष्ट कहा गया कि उसे भविष्य में होनेवाली घटनाओं का संकेत पूर्व ही मिल जाता था।

होटल में रात को देव ने एक रोमांटिक सपना देखा जिसमें नीली आँखों में ग़ज़ब सम्मोहन लिए एक अपूर्व सुन्दर युवती उसके पास आई और 'यहाँ से ले जाओ मुझे वापस वहीं।' कहकर बिना मुड़े ही पीछे हटती चली गई। रात की सुनी हुई अजीबोगरीब आवाज़ तथा सम्मोहित लड़की पर एंगेला और देव के बीच की बातचीत का वर्णन बाद में किया गया जिसमें एंगेला ने यूगोस्लावियन महिला सान्या को चरित्रहीन का खिताब दिया लेकिन देव उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ। 'पर रात उस कमरे में अंधेरा था...कुछ और है यह।' मरी मछलियों की सी गंध के ज़रिये वातावरण को और संजीदा तथा रहस्यमय किया गया। यहीं पर पहली बार लेखक ने रोमा भिखारियों यानी खानाबदोश किस्म के लोगों का उल्लेख किया। एन, यानी इनीस के परिचय के साथ एक रोमा बुढ़िया द्वारा की गई भविष्यवाणी, दोनों को आचंभित करनेवाली इस घटना का कहानी पर बहुत गहरा असर हुआ। या यूँ कहिए कि इसी रोमा बुढ़िया की विस्मित कर देने वाली बातों से ही कहानी में एक नया मोड़ आया। फिर केलिस्ता का सामान्य परिचय कराया गया, एंगेला के शब्दों में 'कुछ नहीं कह सकती...मेरा इन चीजों में विश्वास नहीं...पर केलिस्ता का है। हाँ उस ने तुम्हारा कमरा नम्बर भी पूछा था... वह कुछ जादू वगैरह में विश्वास करती है। ग्रेजुएशन और पोस्ट–ग्रेजुएशन में टॉप किया था उस ने ...दर्शनशास्त्र में। फिर वह पढ़ाई छोड़ कर एक ऐसे ही समूह से जुड़ गई जो इन जादू- टोनों की प्रेक्टिस किया करता था। मरे हुए लोगों की आत्माओं को बुलाते थे वे लोग और उन से जाने क्या क्या पूछते थे, ऐसा मुझे पता लगा, जैसे हम कहाँ से आए हैं, मरने के बाद क्या होता है, कहाँ जाते हैं... आदि आदि। अब वह कुछ नहीं करती, हाँ इधर उस ने बाँसुरी बजाना ज़रूर सीखा और अब दो साल से वही कर रही है। अजीबोगरीब है वह...और तुम भी ...आज शाम को मिलोगे ? पूछ लेना यह सब।'

केलिस्ता के परिचय के तत्पश्चात कहानी वापस होटल की ओर आई। केलिस्ता के साथ बिताए गए डेढ़–दो घंटे की मुलाकात का देव के मन में गहरा प्रभाव पड़ा और उसे पता चला कि केलिस्ता कवयित्री होने के साथ–साथ बाँसुरी भी खूब बजाती थी। एक मादक सम्मोहन धून बाँसुरी में बजाकर वह देव के मन में नशा पैदा कर देने में समर्थ हुई। इस पहली मुलाकात में ही देव उसकी तरफ़ अत्यंत आकर्षित हो गया। देव को उसका चेहरा बहुत जाना–पहचाना सा लगने लगा और बाद में दृढ़ विश्वास के साथ कहने लगा कि

केलिस्ता वही स्वप्न सुन्दरी का वास्तविक रूप था जो उससे होटल में आधी रात को मिलने आई थी। यहाँ पर केलिस्ता के नाम का मतलब 'मोस्ट ब्यूटीफुल...जादुई खूबसूरती' बताकर पाठकगण को कुछ जादुई कारनामों का संकेत दिया गया। केलिस्ता, वास्तव में मुख्य पात्र देव के अन्तस्तल में उठनेवाले भाव या आवेग और कल्पना की ही उपज थी। देव की चिंतन-मनन पर अनजाने ही शारीरिक अभिलाषा का जो आकर्षण हावी हो गया था वह विवेक को कमज़ोर बना रहा था और उस अवस्था में मन का उसके बहकावे में आना लाज़मी था। स्काटहोम में मिली रोमा औरत की बातें देव की ज़हन में संयोगवश बैठ गईं और उसी के आधार पर सपने रचने लगा, कल्पना की दुनिया में उड़ान भरकर मनघडन पात्रों के साथ हृदय की बातें भी करने लगा। उसने खुद स्वीकार भी किया कि ''शायद वहम ही हो या शायद अर्द्धसुप्तावस्था।

तदुपरांत कहानी में सान्या के साथ बिताई गई रात के वर्णन से भी मालूम होता है कि देव किसी मनोवैज्ञानिक समस्या से जूझ रहा था। ''छोटी स्कर्ट से खूबसूरत जाँघें चमक रही थी।'', ''नीचे बादामी रंग का छोटा और कुछ चुस्त ब्लाउज जैसा था जिस की साँसे नाभि से ऊपर तक ही आ कर खत्म हो गई थी।'' जैसे वाक्यों के ज़रिए भी देव के मन के भीतर व्याप्त अतृप्त, प्रबल, वासना भाव का संकेत मिला। एक ही बिस्तर में एक ही कम्बल के नीचे सोते समय उसने सान्या को बार-बार छूने की इच्छा प्रकट की। उसने खुद यह कोई साइको-सेक्सुअल परेशानी का असर बताकर उसपर चिंता भी व्यक्त की। फिर कहानी में मिरतोस बीच की घटना का वर्णन आया जहाँ देव और केलिस्ता एकसाथ कुछ अंतरंग पल गुज़ारने गए थे। यहाँ पर घटित वाकिआ ने देव के अंत:मन के काम भाव को काफ़ी उत्तेजित किया। देव को एक काले-भूरे नाग से बचाते समय केलिस्ता के हाथ देव के कंधों पर और छाती एकदम मुँह के निकट होने से हुई एंद्रिक उत्तेजना उसे तरंगित कर गया जिसका उसे तन-मन से चाह थी या उससे भी कहीं ज्यादा आगे बढ़ने की इच्छा। एक ही कमरे में पूरी रात एक ही बिस्तर पर गुज़ार देने के बाद भी अंतर्मन की कामना अधूरी रह गई।

कहानी का अंत एयर पोर्ट पर हुआ जब देव अपनी इच्छाओं को, पहला प्यार केलिस्ता को यहीं यूनान में छोड़कर भारत वापस जाने लगा था। इसी स्थान पर पर्दाफाश हुआ और देव को वास्तविकता का सामना करना पड़ा। जैसे ही होश सँभाला उसकी प्रेमिका केलिस्ता आँखों से तुरंत ओझल हो गई। केलिस्ता कोई वास्वविक प्रेमिका न होकर एक मनोलोक की कल्पना साबित हुई। देव की कही हुई बातों ''मुझे अपने इस विखंडन पर अब कुछ ज़्यादा ध्यान देना होगा, ज़्यादा सजग रहना होगा।'' से कहानी की समाप्ति हुई। अपने ध्यान और वहम को सुव्यवस्थित करने को ठानकर वह प्लेन की तरफ़ आगे बढ़ गया। कहानी का शीर्षक भी यहीं पर उभरकर आया और कहानी को सौ प्रतिशत सार्थक सिद्ध करता प्रतीत हुआ।

इस कहानी में वर्णित बहुत ऐसे मौलिक विषय हैं जिसपर लेखक ने सूक्ष्म रूप से दृष्टि-पात की है और जिनकी चर्चा करना बहुत ज़रूरी है। दोनों देशों के बीच के सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, और सांस्कृतिक फर्क को लेखक ने बखूबी ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। लेखक ने भिन्न विषयों में जैसे शहर की साफ-सफाई, लोगों में व्याप्त भ्रान्त धारणाएँ, मजदूर लोगों के प्रति दोनों देशों के लोगों का बर्ताव, पढ़ाई के साथ-साथ विद्यार्थियों का पार्ट टाइम काम करना इत्यादि विषयों पर अपना एक सकारात्मक विचार व्यक्य किया है। ''यूरोप की तथाकथित व्यक्तिवादी और स्वार्थी ज़िंदगी के बारे में जैसा हम भारतीयों को बताया जाता है, यह सब उस के उलट था। यहाँ अनेक मददगार और परदुखकातर व्यक्ति और परिवार देख रहा था मैं। बस वे अपनी निजता चाहते थे, इस से अधिक कुछ नहीं...मनचाहा एकांत... यही चीज जो सब से दुर्लभ है भारत में।'' ''ये लोग साफ कहना और सुनना पसंद करते हैं। अगर कुछ परेशानी है तब भी और अगर प्यार है तब भी। वरना ये आप से बात भी नहीं करेंगे। लिजलिजी भावुकता को यह फालतू बात मानते हैं शायद। कोई गलतफहमी नहीं रखते और न रहने देते।'' देव के द्वारा कहे गए इन वाक्यों के ज़रिये यूरोपियन समाज तथा जनता के स्पष्टवादी स्वभाव का प्रमाण मिलता है। साथ ही युनान की मौजूदा आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया। दक्षिण एशियाई देश जैसे भारत और बांगलादेश से आए हुए प्रवासी नागरिकों के प्रति रहनेवाली भ्रान्त धारणाओं को कहानी में प्रस्तुत किया गया। ''यूनानी सोचते हैं कि ये लोग मटन की जगह कुत्ता भी खा जाते हैं और अपने रेस्तराँ में ग्राहकों को खिला भी देते हैं। इन के कोई एथिक्स नहीं। आम यूनानी उन से बचते हैं, उन के रेस्तराँ से भी।''

एक तरफ भारतीय संस्कृति रूढ़ियों और परम्पराओं में अकड़ रहने के कारण पैदा हुई शिथिलता के प्रति विचार व्यक्त किया तो दूसरी तरफ शादी जैसे बंधन के प्रति अपना एक प्रत्यक्ष सिद्धांत प्रस्तुत कर आज की आधुनिक पीढ़ी की सोच को प्रोत्साहित किया है। लेखक ने भारतीय लोगों की कुछ आम आदतों का मज़ाक उड़ाया है तो भारतीय संस्कृति की रक्षा की ज़िम्मेदारियाँ भी सम्पूर्णत: निभाई है, जैसे ''मैं किसी आम भारतीय की ही तरह व्यवहार कर रहा हूँ... किसी के एकांत में ताक-झाँक...मुझ से भला तो वह बूढ़ा था जो अनजान बन निकल गया, देखा तक नहीं। मुझे अपराध-बोध हुआ।'' ''मेरी हिचक यह थी कि वह भारतीयों के बारे में कोई गलत धारणा न बना ले पर उस की क्या दुविधा थी-मैं समझ नहीं सका। उस ने कोई इशारा भी नहीं दिया कि मैं आगे बढ़ पाता। एक ही बिस्तर पर हम दोनों ने अलग अलग टापूओं की तरह रात गुज़ार दी।'' यहाँ पर भारतीय संस्कृति की रक्षा का भाव भी स्पष्ट रूप से झलक उठता है। विदेशों में विद्यार्थियों को शैक्षिक जीवन के दौरान आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होते देखा जाता है। लेखक ने पार्ट-टाइम काम करने की व्यवस्था की प्रशंसा की है और साथ ही इस सच्चाई को भी रेखांकित किया कि बाहर के मुल्कों में किसी काम को छोटा या बड़ा नहीं समझा जाता, सारे कामों को समान रूप से देखा जाता है। दोनों देशों के पर्यावरण के साथ-साथ विश्वभर की समस्याओं पर भी चिंता प्रकट की गई है। भारत जैसे देश में गरीबी, अशिक्षा, स्वास्थ्य, जातिवाद, भ्रष्टाचार और साम्प्रदायिकता जैसी समस्याएँ बहुधा देखी जाती हैं तो युरोपियन देशों की राजनीति में

ग्लोबल वार्मिंग ही उफान पर है। कहानी में युरोपियन देशों के हर एक नागरिक को सचेत दिखाया गया है और साथ ही यह भी सुझाव दिया गया है कि पर्यावरण के संकट को दूर करने के लिए दुनिया भर के देशों की हर एक जनता को सबसे पहले पर्यावरण की एहमियत को समझना होगा। जहाँ हमारे देश में जात-पात की समस्यायों से अभी भी लोग जूझ रहे हैं वहाँ युरोपियन देशों की जनता को ऐसी नकारात्मक सोच, भेद-भाव से कोसों दूर प्रकृति की रक्षा, मानवता की सेवा की सोच में विलीन दर्शाया गया। इस प्रकार के सकारात्मक पैगाम फैलाते हुए तत्पर जनता का वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यक है और किसी एक देश की, जाति की प्रगति ऐसी चिंतन से ही निश्चित रूप से सम्भव है, जिससे लेखक भी सहमत है। कहानी में जवान लड़की एंगेला विदेशी लड़का देव की मदद के लिए आती है और एक होटल में अकेली रहकर देवको अलग अलग जगह की सैर कराती रहती है। ऐसे मददगार दोस्त विदेशों में बहुत देखी जा सकती हैं लेकिन अगर भारत में ऐसा कुछ हुआ तो बबाल मचने की सम्भावना ज़्यादा रहती है। लड़की के चरित्र को लेकर अनेक प्रकार के प्रश्न खड़े हो सकते हैं। रात को डरे हुए देव का साथ देने के लिए सान्या का उसके साथ सोना मानवीयता के उस पक्ष को उजागर करती है जो भारतीय समाज में कभी आदर से नहीं देखा जाता। ''आप चाहें तो मैं रात को यहाँ आप के साथ सो सकती हूँ...सिर्फ सोना।' इस क्षण मुझे बॉलीवुड फिल्मों की वही डायलाग याद आता है कि ''एक जवान लड़का और एक जवान लड़की कभी दोस्त नहीं बन सकते।'' ऐसी मनोवृत्ति संकीर्णता का ही प्रतीक प्रतीत होती है। जवान लड़का-लड़की के बीच शारीरिक आकर्षण के आधार पर बने संबंध के अलावा भी कई संबंध बन सकते हैं जो भाई-बहन के संबंधों जैसा शाश्वत, पवित्र हो सकते हैं। एक संकीर्ण सोच के दायरे से उठाकर लेखक ने पाठक के मन से एक दीवार तोड़ने की कौशिश की है और ऐसी सोच नवपीढ़ियों के लिए एक आदर्श के रूप में स्थापित की जा सकती है।

केलिस्ता जैसे काल्पनिक पात्रों के ज़रिये वास्विकता और कल्पना का सुन्दर समन्वय दिखाया गया है। वर्तमान समय की नवपीढ़ियों की मानसिक समस्याओं का संकेत भी मिलता है तथा साथ ही परम्परागत विचारों के खिलाफ़ आवाज़ उठाकर नूतन दृष्टिभंगी की ओर इशारा किया गया है। अवचेतन मन की भावनाओं तथा इच्छाओं की अभिव्यक्ति भी छलक पड़ती है। कहानी का रूख बदलनेवाली घटना रोमा नारी द्वारा की गई भविष्यवाणी, भारतीय समाज में व्याप्त एक आस्था तथा विश्वास को उजागर करती है।'एथेना तुम्हारा इंतज़ार कर रहा है प्रिय।' इस भविष्यवाणी और मेरी ज़िंदगी से जुड़ी हुई एक ख़ास घटना के सामजंस्य ने मुझे कहानी की ओर अधिक आकर्षित किया। मेरी पीएँच. डी के दौरान आगरा के जनवरी महीने का एक दिन, जब मैं अपने दोस्तों के साथ घर के सामने के बड़े आँगन में दोपहर का खाना खाकर धूप सेंक रही थी और उसी समय गेरुवा वस्त्र पहने हुए रास्ते पर चल रहे एक साधु बाबा अचानक सबके सामने रुक गए और मेरी ओर देखकर उंगली से इशारा कर ऊँची आवाज़ में बोल पड़े ''ऐ लड़की, नीली कमीज़ पहनी हुई लड़की, (उस दिन मैं नीला शलवार-कुर्ता पहनी हुई थी) तेरी किस्मत का सितारा चमकनेवाला है। तू बहुत ही जल्द विदेश में जाएगी और वहीं पर तेरी एक नई ज़िंदगी शुरू होगी।'' मेरे सारे दोस्तों ने बाबा का बहुत मज़ाक उड़ाकर मुझे कहा ''दीदी, अब तो आपको दस रुपये देने ही पड़ेंगे।'' लेकिन उस दिन मेरा हृदय काँप उठा क्योंकि तबतक मैंने कभी विदेश जाने का सपने में भी नहीं सोचा था और पढ़ाई खतम कर अपने राज्य में वापस जाने का ही मेरा एकमात्र लक्ष्य था। बिना दस रुपये चढ़ाए ही लगभग चार महीने बाद बाबा जी की बात सही निकली और मैं अमेरिका में आ गई। रोमा लोगों के प्रति दुनिया भर की जनता की जो धारणाएँ हैं इसकी पुष्टि कहानी में होती है। ''जादूगरनी होगी ज़रूर, रोमा है वह...जिप्सी... तंत्र-मंत्र जानते हैं, हमें नुकसान पहुँचा सकती है।'' हाल ही में देखी रोमा जिपसी के ऊपर बनी ''जिपसि चाइल्ड ट्रैफिकर्स'' नामक डाकुमेन्ट्री से अन्य एक खुलासा सामने आया है कि कैसे रोमा लोगों की औरतें छोटे-छोटे बच्चों सहित यूरोपियन कई देशों में हिजाब पहनकर भिक्षा माँगती फिरती हैं और इसे आसानी से पैसा कमाने का ज़रिया बना लिया है। इसके पीछे एक बहुत बड़े चाइल्ड ट्रैफिकिंग रैकेट की साजिश बताई जाती है, जिसके द्वारा इस तरीके से इकट्ठे किए गए पैसों से रोमानिया में आलिशान बंगला बनवाकर बाक़ी की ज़िंदगी आराम से काटती रहती हैं। वर्तमान समय की सांस्कृतिक ज़रूरतों की माँग को भी कहानी में स्पष्ट रूप से दिखाया जाता है। इनीस के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति रहनेवाली सद्भावना और देव के हृदय में यूनान के प्रति पैदा हुई प्रबल इच्छा सांस्कृतिक अदलाबदली का एक अनुपम उदाहरण है। साथ ही अपने देश के प्रति रहनेवाली गहरी राष्ट्रीय भावनाओं को भी स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। साँप से देव को बचाने की क्रिया से रोमा लोगों की बरसों पुरानी सर्प-दमन परम्परा का उपस्थापन हुआ है।

अजय नावरिया जी ने ''विखंडन'' में सहज और बोधगम्य भावाभिव्यक्ति के लिए पात्रानुकूल सशक्त भाषा का प्रयोग किया है। मानव प्रकृति के साथ साथ बाह्य प्रकृति का भी, युरोपियन भिन्न-भिन्न स्थलों का जो सुन्दर और शानदार विवरण प्रस्तुत किया है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। रूपक, मनोवैज्ञानिक, भावात्मक, लाक्षणिक, चित्रात्मक, प्रतीकात्मक, सरल, अलकृंत एवं सांकेतिक आदि विविध शैलियों का सुन्दर समन्वय प्रतीत हुआ है। कहानी में भावों के मूर्तिकरण की अपूर्व क्षमता झलक उठती है। मनोवृत्तियों का सजीव चित्रण प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। चूँकि भारतीय संस्कृति में भौतिक सुख के बदले आध्यात्मिक सुख-शांति पर ज़्यादा महत्त्व दिया जाता है लेकिन इस कहानी में भौतिक सुखों से वंचित देव के मनस्तत्व पर जो मनोविकारात्मक असर पड़ा है वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बेहद चिंतनीय विषय है। समय रहते ही ऐसे मनोविकारों पर ध्यान दिया गया तो आधुनिक पीढ़ी अनेक प्रकार की मनोव्याधियों के दूरप्रभाव से ग्रस्त होने से बच सकती है और समाज की उन्नति में सशक्त रूप से अपना योगदान दे सकती है।

❑❑❑

nilakshi_phukan@yahoo.com

कथा–एकाग्र

पढ़ते–पढ़ते बस्तर की सैर

(मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी ''सूकी बयड़ी'' के विशेष संदर्भ में)

अनीता सक्सेना

मेहरुन्निसा परवेज़ एक ऐसा नाम है, जिन्होंने आदिवासी बहुल क्षेत्र में अपना बचपन बिताया और वहाँ के जनजीवन को अपने जीवन में इस कदर उतार लिया कि वहीं की भाषा तक बोलने लगीं ! उनके सुख–दु:ख की साक्षी बनी मेहरुन्निसा जी ने अपने लेखन में भी उनके दु:ख–दर्द को ही बराबर दिखाया है ! आप की रचनाएँ पढ़ते समय पाठक एक ऐसी दुनिया में प्रवेश कर जाता है जो है हमारे चारों तरफ ही कहीं रची – बसी लेकिन हम वहाँ रहते हुए भी उसे न देख पाते हैं, न ही समझ पाते हैं और न ही उसके अंदर पहुँचने की हिम्मत करते हैं ! बस्तर के आदिवासी, उनकी बोली, उनका रहन–सहन, उनकी वेश–भूषा, उनके घर, घरों को बनाने के तरीके, उनके तीज–त्यौहार, उनका भोजन हर एक पर आपकी पकड़ इतनी मजबूत है कि लगता है जैसे मानों आप स्वयं उन्हीं के बीच उठ–बैठ रहे हैं ! आदिवासियों को बहुत करीब से आपने जाना है यह आपकी कहानियों में स्पष्ट परिलक्षित है !

कोई भी इंसान किसी दूसरे का दु:ख–दर्द तब तक नहीं समझ सकता, जब तक कि वह उन्हें समझे नहीं, उनके बारे में जाने नहीं, उनकी दुनिया में गुजर–बसर करके और उनके दिल की गहराइयों में उतर कर ही सच्चाई पता चल सकती है ! मेहरुन्निसा जी ने अपनी कहानियों में उनको जीवंत किया है ! आदिवासियों का भोलापन, उनकी मजबूरियाँ, सेठ की चालाकियाँ, आपकी पैनी दृष्टि से कुछ भी नहीं छूटा ! वहाँ के जानवर, पशु–पक्षी, जंत्र –तंत्र सब आपने अपनी कहानियों में हुबहू उतार दिए हैं ! पालतू बकरियों के नाम, मुर्गों के खेल, उनकी लड़ाई, मुर्गी का कुड़क हो जाना, एक मुर्गे का बाँस की बनी फेंसिंग पर चढ़ कर ऊपर बैठ जाना और कुटकुटाना, कहानी में ये न बोल पाने जानवर भी पाठक के प्रिय बन गए है ! आपकी ऐसी ही एक कहानी है 'सूकी बयड़ी ' जिसे पढ़ते–पढ़ते पाठक बस्तर की सैर पर निकल पड़ता है ! भाषा आदिवासियों की है लेकिन कहीं भी समझने में कोई भी दिक्कत नज़र ही नहीं आती क्योंकि आपका वर्णन ही इतना रोचक है कि सब समझ में आ जाता है ! कितनी बार आँख भर आती है और कितनी बार ओंठ मुस्कुरा उठते हैं !

इसे पढ़ते हुए पाठक खो जाता है पहाड़ियों की ढलानों में जहाँ थोरा, होरा और फूलाँ अपने माँ–बाप और एक भाई टेसूआ के साथ रहती हैं ! भाई–बहनों का प्यार और उनके अनपढ़ माँ–बाप के साथ पूरे परिवार की एकता सराहनीय है, मिर्च – नमक और लहसुन की चटनी पीस कर मक्का की सूखी बासी रोटी से सारा परिवार जिस तृप्ति से खाना खाता है वह अच्छे–अच्छे परिवारों में देखने को नहीं मिलता ! बहनों के सुख की ख़ातिर भाई को साहूकार के यहाँ गिरवी रख कर पिता साहूकार से क़र्ज़ लेता है और बेटियों की शादी करता है, पैसा इतना कम है कि भाई शादी में भी नहीं आ पता लेकिन वह परिवार के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी समझता है और अपने माँ–बाप से कोई शिकायत नहीं करता ! संस्कार अनपढ़ आदवासियों में भी हैं ! मौसम के सुन्दर वर्णन से कहानी का प्रारम्भ है ''फागुन का महीना समाप्त हो चुका था और चैत लग चुका था ! खेतों में गेहूँ की बालियों के लटकते लंबे–लंबे झुमके बड़े अच्छे लग रहे थे। गेहूँ के दानों में अभी भी कसर बाकी थी उनमें कच्चा दूध भरा था !'' प्राकृतिक चित्रण भी बड़ा सुहाना है '' एक ऊँचे टीले पर नीम, जामुन और पीपल के पेड़ों के बीच नीमड़ा का अपना कच्चा घर था ! तीन बेटियाँ, एक बेटा और ढेर सारे मुर्गे–मुर्गियाँ यही नीमड़ा की दुनिया, परिवार, धन तथा संपत्ति थे !

' सूकी बयड़ी ' अर्थात् खेती लायक ज़मीन के बीच उठी हुई एक छोटी बंजर पहाड़ी ' ! बयड़ी बंजर होती है उस पर खेती नहीं हो सकती उस पर सिर्फ झाड़–झंकाड़ ही उगते है ! 'दो बहनों में से एक बहन गोरी है और एक साँवली, दोनों की शादी एक ही घर में कर दी जाती है ! साँवली बहन माँ नहीं बन सकती हताशा से वह कहती है कि मैं तो खेत की ' सूकी बयड़ी' के समान हूँ जो बंजर है, जिस पर धूप ही धूप है और जिसके कारण खेती योग्य ज़मीन भी बेकार बर्बाद हो रही है, वहीं दूसरी बहन उसे समझाती है कि 'भूल गई तू, बापू कहते थे न ! जो ऊँची बयड़ी पर बैठे वो बड़ी बात बोलता है और बड़ा मान पाता है और ये बयड़ी सारी धूप झेल लेती है इसीलिए तो खेत हरे–भरे रहते हैं !' बहन का यह कहना सार्थक सिद्ध होता है जब यही 'सूकी बयड़ी 'परिवार के ऊपर विपदा आने पर पुलिस की आँच नहीं आने देती और परिवार की इज़्ज़त बचा ले जाती है ! वह पति की त्याज्य सही पर परिवार की नाक काटने से बचा लेती है। बयड़ी का असली महत्त्व तब समझ में आता है !

कथा चूँकि आदिवासियों की है अत: वहाँ के तीज–त्यौहार, रीति–रिवाज, दैनिक जीवन की चीज़ें आदि का विस्तृत वर्णन है ! त्योहारिया हाट और भगौरिया हाट; : आदिवासियों की हाट दो तरह की लगती है – त्योहारों पर त्योहारिया हाट और शादी के लिए भगौरिया हाट ! त्योहारिया हाट के पहले लोग पैसे बचा कर रखते हैं और उस दिन खूब सामान खरीदते हैं ! त्योहारिया हाट पर

सामान खरीद कर नवयुवक लड़कियों को भगौरिया हाट में तोहफे देते हैं ! त्योहारिया हाट का जीवंत वर्णन देखिए ''हाट ठठाठस भरी थी कोलाहल से कान फट रहे थे ! कपड़ा, कंघा, काजल, आईना, चूड़ी, बिंदी, तेल, गुड़, नारियल, बताशा, लाई-चना, महुआ, गोटा-किनारी, गुलाल, रंग, घाघरा-चोली, गिलट-चाँदी के गहने, बर्तन आदि की दुकानें लगी थीं ! हाट में क्या नहीं बिक रहा था ! दुकानों की सजावट देखते ही बनती थी ! झूला, सर्कस, जादू की परी, फोटू की दुकानें अलग लगी थीं ! खोमचे वाले अलग बैठे थे ! पान की दुकानें अलग लगी थीं ! उत्साह-उमंग देखते ही बनता था !''

भगौरिया हाट होली के समय लगती है, उसका वर्णन पढ़ते-पढ़ते पाठक स्वयं वहाँ पहुँच जाता है.....''भगौरिया हाट के लिए बच्चे - बूढ़े और जवान सबके चेहरे पर प्रसन्नता थी ! सब सुबह से वहाँ जाने के लिए सज रहे थे ! घर-घर से ढोल निकल आए थे, ढोल को ठोक बजा कर दुरुस्त किया जा रहा था ! तीर-कमान, तरकश, बाँसुरी और मोरल्या निकाल कर सब धारण कर रहे थे ! सारे गाँव में एक उत्सव का माहौल था ! नाचने वाले युवकों ने अपनी रंगीन पगड़ियों में छोटी-छोटी जामुन की टहनियाँ मुकुट की तरह सजा रखी थीं ! पैरों में घुँघरू बंधे थे ! ढोल की थाप और बाँसुरी के स्वर ने सारे वातावरण में एक जादू सा कर दिया था ! रास्ते में गेहर टोलियाँ आमने-सामने पड़ जातीं तो जिसका ढोल देर तक बजता उसे जाने के लिए पहले रास्ता मिलता था ! गेहर टोलियों के युवकों ने तरह-तरह के स्वाँग रचे हुए थे ! कोई स्त्री का वेश रखा था तो कोई शेर बना था ! नए कपड़ों की सरसराहट, चूड़ियों की खनक, पायलों की रुनझुन से वातावरण में नरमी थी ! गुलाल का आदान-प्रदान करने वाले युवक तथा युवतियाँ अपने जोड़े बना कर हाट से भाग गए थे !''

कहानी में आदिवासियों की शादी व्याह के रस्मों-रिवाज का वर्णन भी रोचक है ! आदिवासी नवयुवक और युवतियाँ भगौरिया हाट में आपस में बात करके एक दूसरे को गुलाल लगा कर शादी कर लेते हैं और भाग जाते हैं ! भागी हुई लड़की का पिता

लड़के के घर के सामने चोली और तीर रख कर आता है यदि लड़के के पिता ने चोली रख ली और तीर वापस कर दिया इसका मतलब कि लड़की उन्हें स्वीकार है लेकिन यदि उन्होंने तीर रख कर चोली वापस कर दी तो मतलब कि लड़की उन्हें स्वीकार नहीं है, यहाँ लड़ाई की नौबत आ जाती है ! युद्ध तक छिड़ जाते हैं आपस में ! इसलिए महत्त्व उनके यहाँ फेरे वाली शादी को ही ज़्यादा दिया जाता है ! इस शादी में खर्चा ज़्यादा होता है इसलिए कभी-कभी लड़के वाले लड़की को अपने घर ले जाते हैं और वहीं पर फेरे करा लेते हैं !'' हल्दी-तेल की रस्में यहाँ भी होती हैं, सावंग यानी शगुन भेजा जाता है ! जिस बैलगाड़ी में सावंग आता है उसके बैलों तक का भी तिलक करके स्वागत किया जाता है ! हल्दी के गीत गाए जाते हैं ''

''हलदुली कहाती मंगायो वो हलदुली राणी'' बेटी की शादी पर माँ का कलेजा रो उठता है वह कहती है ''बेटी के भाग्य रोपा कहीं डले, फसल कहीं उगे नी !'' भाग कर शादी करने की अपेक्षा फेरे ले कर शादी करने को यहाँ महत्त्व दिया जाता है ! नीमड़ा फूला का पिता है,वह फूला की माँ से कहता है ''सावंगवा ब्याह का हमारी जाति में बड़ा आदर है, तू कई जाणे, मंगनी करके, फेरे लेकर जाने वाली बेटी भाग्यवान् होती है ! बिरादरी और ससुराल की आन होती है !'' सावंगवा ब्याह यानी फेरे वाली शादी ! इसलिए अंत में थोरा भी गर्व से कहती है ''मैं कोण भगौरिया हाट से आई हूँ ! ब्याह करके दिया है मेरे बापू ने, फेरे लेकर आई हूँ, देहरी नीं छोडूँगी !''

पहेलियाँ; आदिवासियों के मनोरंजन के साधन बड़े सरल हैं, शहरी चकाचौंध उन्हें छू तक नहीं गई है ! बैलगाड़ी पर बैठी खिलखिलाती हुई लड़कियाँ हाट जाते में एक-दूसरे से पहेलियाँ पूछ रही हैं 'दुई भाई एक चाँद रहे, पर मिले नहीं !' या फिर 'धम-धम रानी महल चढ़े' रास्ता भी कट रहा है और मनोरंजन भी हो रहा है !

गोदना का वर्णन ; कहानी में लेखिका ने गोदना कला का सुन्दर वर्णन किया है ! आदिवासी लड़कियों का एक आकर्षण मेले में अपने हाथों, पैरों, पीठ और चेहरे पर गोदना गुदवाने का भी रहता है ! गोदना आक के काँटे से गुदता है ! ठोड़ी पर सरसों का फूल, कलाई पर पति का नाम गुदवाना, कनपटी पर चिरत्या, पैरों पर मोर आदि बनवाती हैं ! उनका कहना है 'गोदना गुदवाने से रोग, बुरी आत्मा, भूत आदि नहीं लगते ! गोदना गहने से बढ़ कर है, गहना तो यहीं रह जाएगा गोदना मरने पर साथ जाता है !'

गल्ला मंडी का दृश्य और चाँद की परिभाषा ; गल्ला मंडी यानी दूर-दूर से लोग अपनी मेहनत से उपजाई दालें और अनाज वहाँ लेकर आते हैं और सेठ साहूकार उसे खरीदते हैं ! बैलगाड़ियों का मेला सा लग जाता है, दिन भर चलने के बाद रात को बैलगाड़ियों के खूँटे से लालटेनें टाँग दी जाती हैं ऐसा लगता है मानों लालटेनों का भी मेला लगा हो ! चाँद हँसिए के आकार में आकाश पर उग आया था ! कंडे सुलग रहे थे और बाटियाँ बन रही थीं ! कोई हुक्का गुड़गुड़ा रहा था कोई बीड़ी के सुट्टे खींच रहा था, कोई लेटा हुआ गीत गा रहा था ! रात को मंडी पूरी तरह मेले में बदल जाती है, सारी रात का रतजगा होता है माल की रखवाली के लिए ! मंडी के पास ही चाय की एक गुमटी है लाखो बुआ की ! जाने कितने वर्षों से वह चाय बेच रही है काला ओढ़ना, कत्थे रंग का घाघरा, तथा जेबों वाली कमीज़ -अचकन पहनती है लाखो बुआ ! लंबी सी थैली कमर में खोंसे है, जिसमें रेज़गारी, तंबाकू की डिब्बी, नस की डिब्बी, चूने की डिब्बी रहती थी ! लाखो बुआ के पास ढेर सारी बकरियाँ हैं और सबके नाम रखे हैं उन्होंने लालपरी,नीलमपरी,सोनपरी, सफेदपरी आदि यानी हर तरह की परी बकरियाँ थीं उनके पास जो एक आवाज़ में चली आती

थीं ! नीमडा लाखो बुआ से पैसा माँगते हुए निवेदन करता है ''म्हारा एक ही छोरा है ! मोटी रकम की दरकार है, जमानत के वास्ते छोरा ने मजूरी पर राखूँगा !''

लाखो बुआ उसको चाय पिलाती है, पैसे भी नहीं लेती और कहती है ''पण उंघा घड़ा पे पानी णी टिके'' बुआ के पास पैसे नहीं है लाचार नीमड़ा साहूकार के पास टेसूआ को मात्र एक हज़ार में दो साल के लिए बँधुआ मजूर बना कर छोड़ देता है ! काम क्या करना है यह सेठ पर निर्भर है टेसूआ के पूछने पर एक लड़का बताता है 'सपेरे पहले साँप को टूकने में रख कर उसे रहना सिखाते हैं फिर नचाते हैं'

मेहरुन्निसा जी की कहानियों और उपन्यासों में स्थानीय जन जीवन का जीवंत चित्रण तो होता ही है साथ में मुहावरों, लोकोक्तियों का भरपूर वर्णन भी होता है, इस कहानी में भी कई लोकोक्तियों का प्रयोग है जैसे ;-

'पेट में आँटी रखना'

'कैरम के खेल में राणी को घर में डालो तो खेल खत्म'

'छोटे जानवर हाँका में रखकर बड़े जानवर फँसें तो कोण नुक्सान'

'देशी कुत्ता और देशी आदमी आसानी से नहीं जाते'

अंत में ''दूर किसी गाड़ीवान की कल्पना में चाँद धीरे-धीरे नीचे सरक रहा था, किसी रोज़ चाँद धरती पर उतर आया तो ? उसका मधुर स्वर और हवा में तैरता गीत बहता सा चला आ रहा है

'संगी कदे मिलेगा रे
काँस फूले फागुण रे
पीर टीसे करेजे में
अब के बरस अइयो भगौरिया हाट रे
पूछो काईं खरीदो हाटा में
बोल बिन मोल खरीदे
पूनम नो नवा चाँद रे ....'

दिल को छू लेने वाली मेहरुन्निसा परवेज़ की बहुत ही मर्मस्पर्शी कहानी है ''सूकी बयड़ी '' ।

❑❑❑

बी- 143
न्यू मीनाल रेसीडेंसी
भोपाल - 23
संपर्क : 7552689899, 9424402456

पुस्तक चर्चा

हँसी की चीखें

कांता राय

पुस्तक: हँसी की चीखें (लघुकथा संग्रह)
लेखक: संतोष सुपेकर
प्रकाशक: अक्षर विन्यास

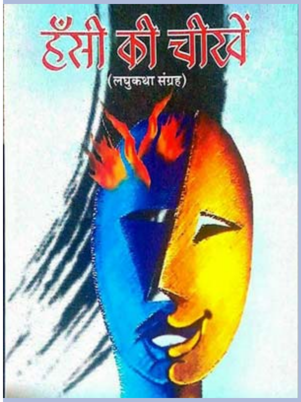

लघुकथाकारों में संतोष सुपेकर भी रचनाधर्मिता का निर्वाह करते हुए, लघुकथा क्षेत्र में अपनी सार्थक लघुकथाओं के आमद से मजबूती बनाए हुए हैं। सन् 1987 से लघुकथा में अपना योगदान देते हुए विधा के विकास में यह आपकी पाँचवीं पुस्तक है जो ''हँसी की चीखें'' बनकर आई है। जैसा कि नाम से ही पुस्तक स्वंय में निहित विसंगतियों को मुखरित करती है, यह हँसी की आड़ लेती हुई तीव्र चीखों से त्रासदपूर्ण परिस्थितियों का एक नया स्वरूप सामने लाती है। लेखन की प्रौढ़ता लिए हिन्दी गद्य साहित्य में विधा के परिपूर्ण करती यह पुस्तक अपनी लघुकथाओं में वैविध्य रूप में कथ्य को विस्तार देती है।

''हँसी की चीखें'' लघुकथा संग्रह की प्रथम लघुकथा 'अर्जी' पढ़ते हुए मन द्रवित हो उठा। पिता और बेटे के रिश्तों की गर्माहट देखने को मिला जो बचपन में नन्हें-नन्हें हाथों से बेटे के द्वारा लिखित पर्ची पिता द्वारा संग्रहित कर अब तक रखी गई थी। यहाँ बचपन में लिखी छोटी-छोटी पर्चियाँ जिनमें पिता से वस्तु माँगना उल्लेखित था बेहद भावपूर्ण है। बुज़ुर्गावस्था में पिता को मनाना अपने साथ रहने के लिए वैसे ही एक पर्ची लिख कर उनकी जेब में डालना, ऐसा निश्छल सम्प्रेषण संतोष जी ही दे सकते हैं। लेखक अपनी रचनाओं द्वारा ही पहचान बनाता है। ''जैसा खाए अन्न वैसा होए मन'' के आधार पर सारस्वत कर्म में लीन लेखक का समाज के प्रति अनुरागी मन यहाँ सामने उभरकर आता है।

क्षेत्रवाद पर कटाक्ष करती लघुकथा 'ग्लोबल फिनॉमिना' का कथ्य सम्मोहित करता है कि ''क्षेत्रवाद न अमेरिका को सहन होता है, न पड़ोसी या मित्र को!'' लेखक का सामाजिक परिवेश पर महीन दृष्टि को चिन्हित करता है। 'भीगी हुई मुस्कान' जहाँ पति-पत्नी के बीच रिश्तों में बदलाव को सकारात्मक तरीके से कथ्य को चिन्हित करती है वहीं 'प्याज : दो रुदन कथाएँ' एक अति विशिष्ट शिल्प को सामने लेकर आती है। 'फितरत' गढ़ में उस दिन- निश्चित तौर पर सशक्त सम्प्रेषण है। ''हँसी की चीखें'' लघुकथा जो पुस्तक की धुरी है, आम आदमी के जीवन में पल-पल रूप बदल कर आती परेशानियों को केन्द्र में रख कर बुना गया है जो इराक में शुरू कभी न खत्म होने वाले युद्ध के समान है से तालमेल करता कथ्य उभरकर आया है। विरोधाभास लिए सटीक चित्रण इस लघुकथा की बुनावट को विशिष्ट बनाती, शीर्षक के साथ भी पूर्ण न्याय करती है। 'वह ऑक्सीजन!' बीमार माँ से उसके बेटे की मौत की खबर छुपा कर झूठ के निर्वाह उनके लिए ऑक्सीजन के समान को कथ्य मिला है जो बेहद मार्मिक है। 'शक्कर का अर्थ', 'नोट और संगत' 'अज्ञात तथ्य' सहित 'सुखद मोड़' 'बरसों बाद', 'टेस्टी नहीं पॉपकॉर्न' भी बेबाक तरीके से सम्प्रेषित हुआ है। 'सिविक सेंस' लघुकथा फौजी की पत्नी के अकेलेपन को कथ्य देता है। भाषा, शिल्प की दृष्टि से ये वर्तमान समय की सोच और बोलचाल की लघुकथाएँ हैं।

❑❑❑

मकान नम्बर-21, सेक्टर-सी सुभाष कालोनी, नियर हाई टेंशन
गोविंदपुरा, भोपाल- 462023, मोबाइल : 9575465147
ई मेल : roy.kanta69@gmail.com

फिल्म समीक्षा के बहाने

वर्ग भेद की पहचान कराती 'हिन्दी मीडियम'

मैम से माम बनने की यात्रा 'माम'

वीरेन्द्र जैन

जो लोग फिल्मों की कथा वस्तु और कथा कथन में ताज़गी को पसन्द करते हैं, उनके लिए हिन्दी मीडियम एक बेहतरीन फिल्म है। हमारे जैसे अर्ध-सामंतवादी, अर्ध-पूँजीवादी समाज में अंतर्विरोधों के स्वरूप भी भिन्न भिन्न प्रकार के हैं, जिसमें से एक की कथा इस फिल्म में कही गई है।

अंग्रेज़ों के उपनिवेशवाद से हमने बिना सीधे टकराव के जिस शांति और अहिंसा के सहारे आज़ादी प्राप्त की है उसकी कुछ अच्छाइयाँ, और कुछ बुराइयाँ हमसे जुड़ी हुई हैं। यह सच है कि अंग्रेज़ी शासन के दौर ही में हम कूप मण्डूपता से बाहर निकलने की ओर बढ़े और हमने दुनिया को अपना परिचय देते हुए उससे अधिक सीखा भी है। आर्यसमाज जैसे संगठन का उदय, सती प्रथा जैसी अनेक बुराइयों को निर्मूल करने वाले राजा राम मोहन राय, जातिवाद के खिलाफ लड़ाई छेड़ने वाले ज्योतिबा फुले, और अम्बेडकर आदि उन्हीं के शासनकाल में सामने आए। हमारे समाज के बदलाव में विदेश से शिक्षा ग्रहण करके स्वतंत्रता आन्दोलन में उतरे गाँधी और नेहरू जैसे महान् विचारकों की सक्रियता के साथ सोवियत संघ की क्रांति की बड़ी भूमिका रही। किंतु आज़ादी के बाद भी जिन राजाओं नबाबों को गुलाम बना कर अंग्रेज़ राज्य किया करते थे, उनकी भक्ति से समाज का एक हिस्सा मुक्त नहीं हो पाया और उनमें से बहुत सारे अभी भी सांसदों, विधायकों के रूप में हमारे ऊपर शासन कर रहे हैं। अंग्रेज़ी का सम्मान भी उसके अंतर्राष्ट्रीय भाषा होने से अधिक हमारे प्रभुवर्ग की भाषा होने की स्मृति के रूप में बना हुआ है, जिनका हम अभी भी सम्मान कर रहे हैं। आज़ादी के बाद में पैदा हुआ प्रभुवर्ग भी अपनी महत्ता विदेशी वस्त्रों के साथ साथ उनकी भाषा से बनाए हुए है। हमारी चेतना में यह छाया हुआ है कि अगर हमको सामाजिक स्तर में ऊपर उठना है तो अंग्रेज़ी जैसी भाषा के सहारे ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। ऐसी इच्छा रखने वाले लोग अगर खुद अंग्रेज़ी स्कूलों में नहीं पढ़ पाए हैं तो भी अपने बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यम के नामी स्कूलों में पढ़ाना चाहते हैं।

जब पूर्ति से अधिक माँग होती है तो वस्तु या सेवा की कीमतें बढती हैं और कई मामलों में ये कीमतें क्रेता के नैतिक मूल्यों से गिरने के रूप में भी चुकाई जाती हैं। यही नैतिक पतन कभी कभी आत्मा को कचोटता है। हिन्दी मीडियम की कहानी इसी कचोट की कहानी है, जिसे साकेत चौधरी के निर्देशन व इरफान, कमर सबा, और दीपक डोब्रियाल आदि के अभिनय ने मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त की है।

पिछले दशक में ही गैर सरकारी संगठनों ने शिक्षा के अधिकार के लिए जो प्रयास किए थे, वे फलीभूत होने की दिशा में बढ़े थे। [भोपाल के स्व. विनोद रैना भी उस आन्दोलन के प्रमुख योजनाकारों में एक थे व भारत ज्ञान विज्ञान समिति के माध्यम से योजना को मूर्त रूप देते हुए पाए जाते थे] इस योजना का एक भाग यह भी था कि स्कूल को निवास के निकट होना चाहिए व स्कूल के आस पास रहने वाले गरीब समुदाय के बच्चों को भी 25% तक की सीमा में प्रवेश देना हर स्कूल के लिए ज़रूरी होगा जिनकी फीस का अतिरिक्त हिस्सा सरकार वहन करेगी। किंतु जैसा कि ऐसी योजनाओं में होता है वही इसमें भी हुआ कि अमीर वर्ग के लोग गरीबों के रूप में कोटा हड़पने लगे। इसी फिल्म का ही एक डायलाग है जिसमें फिल्म का सहनायक कहता है कि हम गरीबों को मिली ज़मीनों पर अमीरों ने कब्ज़ा कर लिया, हमारा सस्ता राशन ले लिया और अब शिक्षा का अधिकार भी तिकड़म से हथियाने लगे। देश भर में तेज हो रहे दलित अधिकार आन्दोलन भी इसी अहसास से प्रज्वलित हो रहे हैं।

कहानी एक अच्छी कमाई वाले नव धनाड्य परिवार की पढ़ी लिखी बहू की उस महात्त्वाकांक्षा की है जिसे भ्रम है कि अगर उसकी इकलौती लड़की अच्छे अंग्रेज़ी स्कूल में नहीं पढ़ी तो वह हीन भावना की शिकार होकर ड्रग लेने लगेगी। उसका पति उसे खुश रखने और उसकी हर इच्छा पूरी करने के लिए चाँदनी चौक की घनी बस्ती को छोड़ कर वसंत बिहार की पाश कालौनी में रहने लगता है किंतु उसके अंग्रेज़ी अज्ञान और व्यावसायिक पृष्ठभूमि के कारण जब उसकी लड़की का प्रवेश नहीं हो पाता किंतु गरीबों के कोटे में उसके नौकर की बेटी का हो जाता है तो एक दलाल के कहने पर कुछ दिनों के लिए वह गरीब बस्ती में रहने चला जाता है। अमीरी और नकली गरीबी के इस द्वंद्व से उपजी विसंगतियाँ हास्य भी पैदा करती हैं, और उस बस्ती की दशा पर करुणा भी जगाती हैं। गरीबी में भी त्याग, आपसी सहयोग, भाईचारा, आदि उसकी आँखों पर अमीरी से उपजी असंवेदनशीलता की चर्बी को उतार देती है। संयोग से उसकी लड़की का प्रवेश तो गरीबों के कोटे से हो जाता है

किंतु उसे सहयोग करने वाले के बेटे का नहीं हो पाता जो उस सीट का असली हकदार था। इसी विडम्बना से जन्मी आगे की कहानी जल्दी समेटने के चक्कर में थोड़ी बम्बइया हो जाती है, पर मर्मस्पर्शी बनी रहती है।

रोचक बनाने के लिए हास्य के दृश्य और संवाद स्वाभाविक हैं व ठूँसे हुए नहीं लगते। विवेकहीन फैशन, और व्यापार कौशल के दृश्य मनोरंजक हैं। इस फिल्म में व्यवस्था ही खलनायक है और व्यवस्था पर सवाल उठाने वाली सभी फिल्में परोक्ष में राजनीतिक फिल्में ही होती हैं, जो कुछ सोचने और बदलने के लिए प्रेरित करती हैं। यह आमिरखान की अच्छी फिल्मों की परम्परा में इरफान की एक नई कड़ी है।

फिल्मों के प्रचार के लिए हिन्दी अखबारों और पत्रिकाओं का बहुत सा हिस्सा फिल्मी दुनिया की गपशप से भरा हुआ होता है; जिसमें तन मन से युवा पाठकों को सतही सम्वेदनाओं में लपेट कर तरह तरह की झूठी सच्ची सूचनाओं के सहारे जोड़ा जाता है। माम फिल्म को किसी समय की चर्चित अभिनेत्री श्रीदेवी की सौवीं फिल्म और पन्द्रह साल बाद वापिसी आदि से जोड़ कर प्रचारित किया गया था। वस्तुत: यह फिल्म एक ममतामयी सौतेली माँ के विश्वास अर्जन की मूल कथा है, जिसमें वह लम्बे समय तक पूरा प्रयास करके भी अपनी सौतेली बेटी का प्यार नहीं जीत पा रही थी। इसी ग्रंथि ने उसे अपनी इस बेटी के साथ दुष्कर्म कर उसे जीवन भर की मानसिक यातना देने वालों से बदला लेने को प्रेरित किया। जब वह काँपते हाथों से अपराधी पर गोली चलाने न चलाने के द्वंद्व में थी उसी समय स्कूल टीचर के रूप में काम करने वाली माँ को हमेशा मैम के नाम से पुकारने वाली बेटी का उसको माम कह कर सम्बोधित करना उसे माँ के गौरव से भर देता है।

इस फिल्म को खूबसूरती के लिए भी याद किया जा सकता है। खूबसूरत शहर में खूबसूरत स्कूल है, खूबसूरत सड़कें हैं, खूबसूरत अस्पताल हैं, क्लब हैं, इमारतें हैं, पेंटिंग प्रदर्शनियाँ हैं, इसमें एक खूबसूरत घर है जिसमें खूबसूरत सम्पन्न परिवार है। परिवार में सभी एक दूसरे को प्यार करते हैं, भले ही सौतेली बेटी अपनी दिवंगत माँ की याद में दूसरी माँ को यथोचित स्थान नहीं दे पाती और दूसरी माँ अपनी खुद की बेटी के बराबर प्यार प्रकट करने के लिए उस पर माँ के ज़रूरी अनुशासन को शिथिल करती है। कथानक इसी द्वंद्व से पैदा होता है। पिता अपने काम से अमेरिका गया होता है और उसी समय वेलंटाइन डे की लेट नाइट पार्टी में गई हुई बेटी के साथ धनाड्यों के बिगड़ैल बेटे उसका अपहरण करके बलात्कार कर नाले में फेंक देते हैं। बहुत घायल होकर भी वह किसी तरह मौत के मुँह में जाने से बच जाती है, पर एक निर्दोष के साथ अन्याय न होने देने के लिए हज़ार दोषियों को छोड़ देने वाली न्याय व्यवस्था उसे न्याय नहीं दे पाती, जिससे किसी भी तरह बदला लेने की भावना पैदा होती है।

इस फिल्म के दूसरे आयाम में सामाजिक चुनौतियों के विषय सामने आते हैं जिसमें पैसे वालों के किशोर बच्चे रोक के बाद भी स्कूल में मोबाइल ले जाते हैं और उसमें वह सब कुछ देखते दिखाते हैं जो उन्हें नहीं देखना चाहिए। बलात्कार के आरोप में गिरफ्तार अपराधी भी न्यायिक कमज़ोरियों के कारण छूट कर स्वतंत्र घूम कर उपहास सा करते हैं, तो एक शांतिप्रिय नागरिक भी कानून की जगह गैर कानूनी तरीकों को अपनाने को विवश हो जाता है। इस फिल्म में शायद पहली बार थर्ड जेंडर की शिक्षा और उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने के सवाल को उठाया गया है, जिसमें वे शिक्षित होकर अपना व्यवसाय खुद खोलते हैं, भले ही फिल्म में उनका उपयोग गुरु दक्षिणा के रूप में बदले की कार्यवाही में सहयोगी की तरह किया गया है।

इस फिल्म में कानून से निराश होकर बदला लेने के लिए नए तरीके सोचे गए हैं जिनमें सूचना एकत्रित करने वाले प्राइवेट जासूस की भूमिका भी रची गई है, जिसका प्रचलन अभी समाज में शादी व्याह के संबंध में लड़के लड़कियों से सम्बन्धित जानकारी जुटाने तक ही सीमित है। इस प्रतिभा का उपयोग अपराधियों के बारे में जानकारी जुटाने के लिए भी हो सकता है। जेल में पैसे वाले परिवारों के कैदियों, और किशोरों के साथ दूसरे बन्दियों द्वारा होने वाले दुर्व्यवहार की भी थोड़ी झलक है। एक ओर जहाँ बलात्कार के दोषियों को कानूनी कमज़ोरियों के कारण सज़ा नहीं मिल पाती वहीं दूसरी ओर इनसे बदला लेने के लिए नायिका गलत सबूत देकर उसे उस बात के लिए सज़ा दिलवा देती है जो अपराध उसने किया ही नहीं था। इसी न्याय व्यवस्था से असंतुष्ट पुलिस अधिकारी दुर्दांत अपराधी पर गोली चलाने के लिए खुद ही नायिका को सहयोग करता है।

न्यायिक कमज़ोरी के अलावा सबकुछ सुन्दर बनाने के लिए कहानी के अंत को बम्बइया बना दिया गया जिसमें ठीक समय पर आकर पुलिस नायक नायिका को बचा लेती है और अपराधी मारा जाता है। अपराधी हिमालय की खूबसूरत वादियों में कुछ ही घंटों में पहुँच जाता है, और ईमानदार पुलिस भी ठीक समय पर पहुँच जाती है। चौकीदार के घर को छोड़ कर फिल्म में स्वच्छता इतनी अधिक है जैसे कि देश में स्वच्छता अभियान सफल हो गया हो। ऐसी प्रस्तुति फिल्म को एक मनोरंजक व्यावसायिक फिल्म में बदल देती है।

फिल्म में सबका अभिनय सधा हुआ है, एक प्रौढ़ माँ के रूप में श्रीदेवी, जासूस के रूप में नवाजुद्दीन सिद्दीक़ी, पुलिस अधिकारी के रूप में अक्षय खन्ना व पिता की भूमिका में अदनान सिद्दीक़ी मुख्य भूमिकाएँ हैं जिसे निभाने में वे पूरी तरह सफल हुए हैं। पहली फिल्म का सफल निर्देशन करके चित्रकार रवि उदयावर खरे ने बहुत उम्मीदें जगाई हैं। लगातार बाँधे रखने वाली आम व्यावसायिक फिल्मों से तो यह बहुत अच्छी फिल्म है किंतु सार्थक सिनेमा से दूर है।

❑❑❑

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल (म.प्र.)
462023 मोबाइल 09425674629

साहित्य का भी राजनीतिकरण हो गया : कृष्णा अग्निहोत्री

कथाकार ज्योति जैन की बातचीत

प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री जी को मैं सदा ही इस रूप में देखती हूँ कि सोना आँच में तपकर और निखर आता है, उनसे कई सारे विषयों पर चर्चा हुई, कई सवाल किए जिनके उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार ही बड़ी बेबाकी से उत्तर दिए-

प्रश्न - कृष्णा जी आपके लेखन में कसावट क्या आपके संघर्षो से आई? आपके संघर्षों के बारे में बताएँगी।

उत्तर - मेरा संघर्ष चौमुखी रहा । प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कभी भी नियति संघर्ष झोंक सकती है। मैं एक संपन्न व सुसंस्कृत परिवार की जेठी प्रिय बेटी रही, मेरे जन्म समय मेरे पिता पं. रामचन्द्र तिवारी स्वयं ही संघर्षरत थे। जन्म नसीराबाद में हुआ, पर शीघ्र ही पिता खण्डवा (म.प्र.) में बसे व वहाँ संपन्नता आ गई। विवाह की उम्र 16 वर्ष थी, केवल मैट्रिक पास थी। कुछ चिंतन व जीवन शैली में अंतर के कारण दाम्पत्य जीवन दुःखद रहा। पति ने आई.पी.एस. की नौकरी छोड़ी व मानसिक रोगी हो गए। इस कारण वे भले-बुरे के विचारों से दूर एक क्रोधी पति मात्र रहे और मुझे मेरे ससुर की सलाह से ससुराल छोड़ना पड़ा। मायके में आई तो पिता ने आत्मनिर्भर बने हेतु शिक्षा पर ध्यान देने को कहा, बस उनकी मृत्यु हुई व अर्थ की समस्या ने मुँह खोल दिया।

पिता की मृत्यु पश्चात् भाई ने घर से निर्वासित किया तो रहने-जीने व बेटी पालने की समस्या खड़ी हुई। पति व ससुराल सब समाप्त, वहाँ सिवा देवरानी के कोई नहीं। यहाँ से वहाँ अकेले रहकर जीवन जीने की त्रासदी साथ ही सामाजिक रूढ़ियों व पुरुषीय समाज शोषण से मुकाबला, सबने इतने सारे दर्द-चुनौतियों के अनुभव दिए कि समझ नहीं आया कि कब लेखन उन्हें चीरता आकर सम्मुख खड़ा हो गया। बन गई तीन कहानियाँ, लिख गया प्रथम उपन्यास, बात एक औरत की। छपी धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान व कादम्बिनी में रातोंरात लेखक बन गई। बधाई के डेढ़ सौ पत्र भी मिले।

प्रश्न - कृष्णा जी आपकी लेखन यात्रा की शुरूआत कैसे हुई? किन बातों का आप पर प्रभाव पड़ा ?

उत्तर - वातावरण व संस्कारवश। पिता के घर माखनलाल चतुर्वेदी, भवानीप्रसाद मिश्र, नीरज, सुमित्रा सिन्हा, शिवमंगलसिंह सुमन आदि आते थे। उनसे प्रभावित होती कि मैं भी लेखक बनूँगी। माँ के कारण धार्मिक व बढ़िया साहित्य पढ़ा, पिता ने सांस्कृतिक अध्ययन करवाया तब मैं 10 वर्ष की थी। प्रातः उठकर गीता पढ़ती। 9 वर्ष में कविता लिखी जो बाल-सखा में छपी।

प्रश्न - आपका साहित्यिक गुरु कौन रहा? प्रकाशन की शुरूआत किस प्रकार हुई ?

उत्तर - वातावरण, अध्ययन, खंडवा का परिवेश। शरदचंद्र ने व रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अधिक प्रभावित किया। मार्गदर्शन राजेन्द्र अवस्थी ने दिया। प्रारम्भ में आदर्शवादी कहानियाँ, समाज-कल्याण, नवभारत टाइम्स में मनोरमा आदि में छपी। पर नई कहानी तो समझी और जब भीतर के और कुछ खोखले रिवाजों ने दबाया तो विचार कहानियों में ढलते रहे और अब 18 कहानी संग्रह तक मैं जा पहुँची हूँ।

प्रश्न - कृष्णा जी क्या आपके अवचेतन में नारी ही लेखन हेतु संबल थी?

उत्तर - प्रत्येक रचना के केन्द्र में नारी ही नायिका रही पर रचना पारिवारिकता में या अन्य कटघरे में नहीं बँधी। मेरे अनुभवों की ज़मीन एकरस नहीं, मेरे लेखन में बहुविविधता है, चौमुखी यात्रा मेरी कथा की है। मैं स्वयं नारी हूँ तो नारी का विवरण बारीकी से कर सकती हूँ। पर पुरुष तो छूटे नहीं विषयानुसार ही उन्हें गढ़ा जाता है, तो वही मैंने भी किया।

प्रश्न - पुरुष लेखक क्या स्त्री को साहित्य में सही ढंग से चित्रित कर सकता है?

उत्तर - हाँ, पुरुषों ने ही लेखन, इतिहास गढ़ा। यह बात अलग है कि स्त्री ने अपनी वास्तविकता स्वार्थपरक करने हेतु यथार्थ लेखन किया। स्त्री ने अपनी समस्याओं को खुलकर लिखा व अपनी लड़ाई भी की। स्त्री ने पुरुष शोषण के यथार्थ पहलू खुलकर चित्रित किये। शरद, रवीन्द्र जैसे।

प्रश्न - आज की साहित्यिक परिस्थितियों के बारे में आप क्या सोचती हैं ?

उत्तर - परिवर्तन तो स्वाभाविक है, पर उसमें विकास है तो ठीक पर विघटन हो तो ग़लत। आज ठोस परिपक्व वो साहित्य है, जो समाज के हित के लिए संदेश व अर्थवत्ता लेकर लिखा जाता था। वह विघटन की दिशा में है। पूरी तरह बाज़ारवाद में फँसा हुआ। संपादक बदले तो पत्रिकाओं में लेखक बदले, संपादकों के अनुसार लिखो।

अच्छा लेखक व लेखन को हाशिये पर डाला जा रहा है। नई पीढ़ी कुछ भी लिखेगी तो उसे तत्काल पुरस्कार, अकादमी अवार्ड,

पूर्व लेखक ने एड़ियाँ घिसकर अच्छा लिखा, नए संपादकों ने उसे हाशिये पर डाला है। साहित्य का भी राजनीतिकरण हो गया। इस गुटवाद में फँसकर लिखा जो रहा है अब व्यक्ति देखकर लेखन छपता है, योग्यता को कोने में डाल दिया गया है।

प्रश्न – लेखन की ऊँचाई का मापदंड आपके हिसाब से क्या है?

उत्तर – है न! जिस लेखक में सामाजिक शोषण, बुराइयों का चलन न हो, जिसमें आधुनिकता न हो, सोद्देश्यता या अर्थवान नहीं, वो ऊँचाई नहीं पाता। समय उसे धो देता है।

प्रश्न – कृष्णा जी नई पीढ़ी और लेखक क्या सोचता है?

उत्तर – नई पीढ़ी दबाव में नहीं है। सब कुछ बिना अध्ययन के सरलता व शीघ्रता से पा लेना चाहती है। बाज़ारवाद में फँसी यह पीढ़ी न तो संघर्ष करती है, न विचार, बस पैसा फेंको, व्यक्तिगत संपर्क व राजनीतिक संबंधों से सब कुछ पा लेने में सक्षम हैं। प्रसिद्धि पाने हेतु खर्च करो, मिलो–जुलो आदि। अपने से पूर्व पीढ़ी के लेखन से अपरिचित है बस जिसे अवार्ड मिला, वही सबसे बड़ा लेखक होता है। इनमें साहित्य समझने व उसे विश्लेषित करने की क्षमता नहीं। मुझे तो लगता है कि भविष्य में वर्तमान अंग्रेज़ी के कुछ लेखकों की भाँति ये भी मात्र रोमांस व सेक्स ही में लिखेंगे, क्योंकि सूक्ष्म दृष्टि है ही नहीं। वैसे 100 में से 2 तो अच्छा लिख ही रहे हैं। यह सच है कि इनकी सूचनाएँ पुस्तकों, गूगल, वॉटसएप, फेसबुक ही है। इन्हें अध्ययन से कोई लेना–देना नहीं। कहीं ऐसा न हो कि ये भी ऐसा लिखें – वो देखो ग़रीब आया, चला आईस्क्रीम खाने, बच्चों को चोर। यह भेजा स्वयं चले भीख लेने, यही तो जीवन है।

प्रश्न – आपकी आत्मकथा में क्या सच ही सच है? आपको कुछ लोग बोल्ड कहकर नकारते हैं।

उत्तर – आत्मकथा भोगा हुआ सत्य है। किसे पता है कि मैं किन कठिन परिस्थितियों से गुज़री। मैं स्वयं ही उनकी साक्षी हूँ व वे साक्षी हैं जिनसे इनका संबंध हैं। मैं अन्याय व शोषण को नहीं सह पाती। इसलिए निर्भीकता के अपनी हानि की चिंता छोड़ व्यक्त कर देती हूँ। मुझे बोल्ड या अश्लील कहने वाले वहीं हैं, जिन्होंने मेरा शोषण कर मुझे मेरे लेखन को नकारना चाहा। जब दोनों आत्मकथनों में मुझे प्रसिद्धि दी तो पुरुषों को बहुत ईर्ष्या हुई व एक स्थानीय गुट व अन्य गुटों ने मुझ पर बेहूदे कमैन्ट्स किये। मैं चुपचाप उसका विरोध लेखन से करती रही, इसीलिए जो लड़कियाँ छात्र आत्मकथा में पीएँच. डी कर रहे हैं वे मुझे पसंद कर डेशिंग कहते हैं।

प्रश्न – कृष्णा जी नई पीढ़ी को संदेश देना चाहेंगी?

उत्तर – बस यही कि श्रम, संघर्ष, अध्ययन, अनुभवों को अपनी संवेदनाओं से व्यक्त करें। मात्र व्यक्तिगत संपर्क, पैसे का बल पर लिखा पानी में बह जाएगा। सीनियर्स को पढ़ें, उनका आदर करें ताकि यही प्रथा उन पर भी लागू हो। लेखक एक दायित्व है, मात्र पुरस्कार अर्जित करने का माध्यम नहीं। ग़लत राहों से गुज़र कर छपना, पुरस्कार पाना बेमानी है।

प्रश्न – क्या आवश्यक है कि लेखन में यथार्थ ही हो?

उत्तर – हाँ, अब वैज्ञानिक युग में मात्र कल्पना से लेखन परिपक्व नहीं होता।

प्रश्न – क्या किसी वाद ने स्त्री को प्रभावित किया?

उत्तर – वाद कटघरे है, उनमें बंद भावनाएँ कराहती हैं। मुक्त अहसास नहीं कराती। मेरा पूरा लेखन यथार्थ की बुलंदी पर खड़ा है।

प्रश्न – देश की स्त्री को अब भी उसे कैसे परिभाषित करेंगी?

उत्तर – स्त्री आज भी माँ, बहन, पत्नी, बेटी है, बस कुछ प्रारूप बदले हैं। माँ आदर के योग्य कम है। बहन .... से बनती है। पत्नी–पति में समन्वय समझौते कम हैं, वहाँ भी बाज़ारवाद घुस गया है।

समाज में आज भी स्त्री की या लड़की की परिभाषा रूढ़िग्रस्थ है। वह पुरुष जैसी उच्छृंखल, स्वतंत्र ज़िंदगी नहीं जी सकती। जब तक समाज का चिंतन बेटी, बेटे में भेद न रखे तब तक लड़कियों को पुरुषीय अवगुणों से दूर रहना चाहिए जैसे खुलकर–पीना, सिगरेट, खुले कपड़े, पब आदि में मस्ती करना। शील तोड़ना आदि, ये बुराइयाँ लड़कों के लिए भी बुरी है, पर लड़कियाँ इनमें असुरक्षित हैं। स्त्री अनैतिक अच्छी नहीं लगती। वो आज भी माँ है और संतान को संस्कार देती हैं। मैं उन्हें पूर्व सी पैर चाँपने वाली, दब्बू, कायर व विचारहीन नहीं देखना चाहती, परन्तु अति वर्जन वे उच्छृंखल न हों, न ही गलत पुरुषीय अवगुण अपनाएँ। शारीरिक व भावनात्मक दृष्टिकोण ने प्रकृति से ही उसे कोमल, अशभु बनाया है। वो चोटों को सह नहीं पाती, इसलिये खतरों से खेलना अनुचित है। लड़के–लड़की साथ रहेंगे तो आकर्षण प्राकृतिक है, पर इसे शालीन बनाना सुसंस्कृत रखना लड़कियों की ज़िम्मेदारी है। वो शरीर की रेखाओं को यदि उजागर करने वाले सस्ते कपड़े पहनती हैं तो वह मात्र आकर्षित करने हेतु जीती हैं तब यदि पुरुष उसे भोग्या मात्र समझे तो रोना–पीटना क्यों? शोषण के दरवाज़े खोलेंगे तो प्रवेश तो उसका होगा है। शालीनता से भी फैशन जीना अपनाया जा सकता है।

प्रश्न – आज के माहौल में संवेदनशील स्त्री अपनी अस्मिता के साथ क्या नहीं जी सकती?

उत्तर – नहीं, क्योंकि उसकी अकेली स्थिति को आज भी पुरुष खुला दरवाज़ा मानता है, उसे पूरा हक़ है कि वह दुराचार करे। या तो उसे शासकीय सुरक्षा हो या स्वयं स्त्री ही स्त्री की रक्षा करे, तभी अस्मिता बचेगी?

प्रश्न – आपकी कहानियों में आपका क्या उद्देश्य है?

उत्तर – सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय विसंगतियों का भंडाफोड़, अच्छाई मानव मूल्यों का आवाहन।

प्रश्न – विवाहेत्तर संबंधों के विषय में क्या धारणा है आपकी?

उत्तर – मैं इसे ग़लत मानती हूँ। ये एक स्त्री का दूसरी स्त्री की अस्मिता पर आक्रमण है। पर यदा–कदा पति या पत्नी के दुष्परिणाम से वे दूसरे सेक्स की ओर आकर्षित होते हैं। स्थिति, परिस्थितियाँ ही इसको परिभाषित करेंगी, वैसे मैं कहूँगी नहीं हो। हो तो अलग होकर जिओ। कुत्ते बिल्ली से भिड़ो मत। सुलझकर विदा लो अन्यथा परिवार टूटेगा और संतान का भविष्य नष्ट होगा।

प्रश्न – कृष्णा जी स्त्री विमर्श का विकास ठीक से क्यों नहीं हो पाया?

उत्तर – स्त्री विमर्श अब केवल निम्न वर्ग में है। स्त्री अब अधिकतर समानता से जीने की राहें समझ चुकी हैं।

प्रश्न – शासन, स्त्री कल्याण की योजनाएँ बनाती है, पर वे सफल क्यों नहीं?

उत्तर – वहाँ भी स्वयं स्त्री ही स्त्री की ईर्ष्या जलन आदि के कारण दलदल में फँसाती है। महिला आयोग असावधान है। मैंने अंधविश्वासों में महिलाओं की छोटी-छोटी बच्चियों को बर्बाद करते देखा है या कहें समझा है। स्त्री चोरी, डकैती, बच्ची बेचने आदि सारे बुरे कार्यों में पुरुष की सहयोगी है।

प्रश्न – विवाह उत्पीड़न है, क्या स्त्री के लिये?

उत्तर – नहीं लिव इन रिलेशन शिप एक विदेशी विचार है। विवाह में निष्ठा, विश्वास, प्यार न हो तो वह असफल होता है, पर वहाँ बच्चे असुरक्षित नहीं होते, क्योंकि वहाँ स्थायीत्व व सुरक्षा है। दूसरे संबंधों में भी असुरक्षा का अस्थायीत्व है, निष्ठा व प्यार वहाँ भी ज़रूरी है, तब विवाह करके साथ क्यों न रहें? आज महानगरों के इस प्रकार के दुष्परिणाम से लड़कियाँ आत्महत्या कर रही हैं। मेरी कहानियों में सारे अनुभव मेरे व दूसरों से भरे हैं, मैं मानव मूल्य को सर्वोपरि मानती हूँ। साहित्य की प्रसिद्धि पैसे से नहीं परिश्रम व सुचिंतन से होती है, तभी आप इतिहास में रहते हैं।

प्रश्न – क्या साहित्य को जीवन यापन हेतु आप उपयोग करती हैं?

उत्तर – नहीं, साहित्य एक सोद्देश्यपूर्ण संवेदना है। जो अमूल्य है। मैंने आर्थिक संकट वर्षों भोगा है, परन्तु न तो कभी अर्थ की माँग रखी ना ही पुरस्कारों की जोड़-तोड़ से उसे कमाने की लालसा रखी। पढ़ी, प्राध्यापक बनी और लिखती हूँ। लघु पत्रिकादि व सभी छोटे प्रकाशनों से अर्थ की आशा न रख प्रकाशन करवाया। बाज़ारवाद साहित्य का विघटन है। मैं इसकी दौड़ में शामिल नहीं। न ही मैं किसी कटघरे या वाद में उलझ लिखती हूँ। राष्ट्र प्रेम मेरी समस्त रचनाओं से अभिव्यक्ति है।

❑❑❑

1432/24, नन्दानगर, इन्दौर-452011,
मो. 93003-18182
Email : jyotijain218@gmail.com

पुस्तक चर्चा

एक वह कोना

गोविंद भारद्वाज

पुस्तक: एक वह कोना (लघुकथा संग्रह)
लेखक: गोविंद शर्मा
प्रकाशक: साहित्यागार प्रकाशन

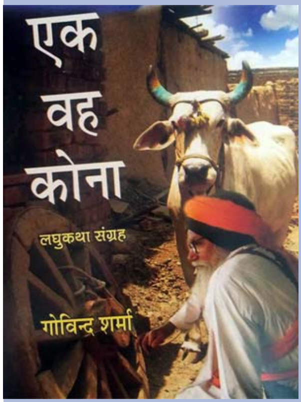

वर्तमान में लघुकथा हिन्दी साहित्य की लोकप्रिय व सर्वमान्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। वर्ष 2016 में प्रकाशित श्री गोविन्द शर्मा के लघुकथा संग्रह 'एक वह कोना' का साहित्यिक संसार में स्वागत है। वाट्स-एप्प, इंटरनेट पर लघुकथा डॉट कॉम एक मज़बूत साहित्य स्तंभ है किंतु पुस्तक के रूप में लघुकथाओं का संग्रह आना बहुत अच्छी बात है। पाठकों में लघुकथा पढ़ने की रुचि दिनों दिन बढ़ती जा रही है; क्योंकि लघुकथा पाठकीय चेतना को झकझोर कर उन्हें कोई गंभीर चिंतन बीज दे सकती है या उनके जीवन की दशा व दिशा बदल सकती है। श्री गोविन्द शर्मा का यह दूसरा लघुकथा संग्रह है। इससे पहले 'रामदीन का चिराग़' नामक लघुकथा संग्रह प्रकाशित हुआ था, जिसकी सराहना लघुकथा जगत् में काफी हुई थी। यूँ तो लघुकथाकार बहुत से हैं लेकिन गोविन्द शर्मा की लघुकथाएँ आकार में छोटी, कसी हुई, कथोपकथन से भरपूर, रोचक-सटीक और प्रत्येक कथा कोई न कोई संदेश देती हैं। लेखक के इस संग्रह में 160 लघुकथाएँ संग्रहित हैं।

अभिमत के अन्तर्गत देश के तीन प्रतिष्ठित साहित्यकारों जयप्रकाश मानव, गोवर्धन यादव, डॉ. शील कौशिक ने लेखक गोविन्द शर्मा के बारे में अपने विचार प्रकट किए हैं। इस संग्रह की प्रथम लघुकथा 'सोच' सचमुच उस बालक की ओर इशारा करती है जो बालक सच बोलने की हिम्मत करता है किंतु सच बोलने की सज़ा उसके ग़रीब बापू को मिल सकती है। ये सोचकर बाद में वह चुप हो जाता है। आदमी से अधिक अमीर लोगों ने अपने कुत्तों के प्रति चिंता प्रकट की गई है। टमाटर और मिर्च को प्रतीक बनाकर व्यंग्य लघुकथा 'नेता' बड़ी ही छोटी किंतु बड़ा करारा व्यंग्य आजकल के नेताओं पर कसा गया है। 'मूँछ वाली माँ' शीर्षक से लगता है ये लघुकथा हास्य होगी किंतु बड़ी दर्द भरी है। पति-पत्नी के विचारों को अवगत कराती हुई एक लघुकथा 'इज़्ज़त' है।

लेखक की कई लघुकथाओं में वेदना, संवदेना व व्यंग्य का अहसास होता है। इनमें हृदय के भावों को संजोया गया है। आदमियत, छाया, परीक्षा, नतीजा, ख़ज़ाना, रंग भूख, नया जवाब, ऐसा ही होता है......... लावारिस गोद, कचरा और एलर्जी ऐसी बहुत-सी लघुकथाएँ हैं जो पाठक के हृदय को पिघला देंगी या कुछ सोचने पर मजबूर कर देंगी। ये लघुकथाएँ पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं और क्यों न करें क्योंकि श्री शर्मा लघुकथाकार के साथ-साथ देश के प्रतिष्ठित बाल साहित्यकार और व्यंग्यकार भी हैं।

सभी वर्गों के लिए यह लघुकथा संग्रह निश्चित रूप से पठनीय है। पुस्तक का कवर पेज बड़ा ही सुन्दर, आकर्षक व कुछ सोचने पर विवश करने लायक है। मैंने अपने जीवन में एक संग्रह में एक सौ साठ लघुकथाएँ संग्रहित नहीं देखी थीं किंतु अब देख ली हैं। साफ-सुथरी सेटिंग व प्रिंटिंग वाली इस पुस्तक के लिए लेखक के साथ-साथ इसके प्रकाशक "साहित्यागार प्रकाशन" भी बधाई के पात्र हैं। बस लघुकथाओं की विषय सूची में क्रमांक दिए हैं किंतु लघुकथाओं के साथ नहीं हैं, हो सकता यह प्रकाशक के लिए सुविधाजनक हो.........।

❑❑❑

रंगमंच

''अन्वेषण परंपरा का निषेध नहीं उसका विकास है''

आर्यभट्ट और नाटक 'अन्वेषक'

प्रज्ञा

ऐतिहासिक कथ्य को नाटक की भूमि पर बहुत समय पहले से उठाया जाता रहा है। संस्कृत नाटक में मिथकीय कथाओं का प्रयोग अधिक रहा है पर हिंदी में देखें तो मिथकीय और ऐतिहासिक दोनों ही कथाएँ नाटकों में चली आई हैं। 'तुगलक', 'चंद्रगुप्त', 'आषाढ़ का एक दिन', 'कंधे पर बैठा था शाप', 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'औरंगजेब' जैसे अनेक नाटक हमारे सामने हैं। सवाल उठता है क्या इन नाटकों के माध्यम से नाटककार का मंतव्य इतिहास की समूची जानकारियों और तथ्यों में बंधे एक अतीत के किरदार को दर्शक-पाठक के लिए पेश करना है? या फिर इतिहास के पात्रों का चयन वर्तमान की धारा से सामंजस्य बिठाकर भावी की तस्वीर पेश करना है? या जैसे इतिहास ज़रूरी है वैसे ही ऐतिहासिक नाटक भी ज़रूरी हैं? या फिर इतिहास की कथा वर्तमान में रोचकता और सम्प्रेषण के फलक पर नाटक का मज़बूत शिराज़ा खड़ा करने के लिए प्रयुक्त होती है? सवाल कई तरह के हैं और जाहिर है ऐतिहासिक नाटकों से दर्शकों की अपेक्षाएँ भी भिन्न प्रकार की ही होंगी। पर साहित्य और इतिहास दो भिन्न अनुशासन हैं। साहित्य के अंतर्गत जब ऐतिहासिक नाटकों की बात होगी तो इतिहास का पक्ष सुरक्षित रखते हुए भी नाटककार के लिए ज़रूरी है कि वह उसकी शुष्क तथ्यता में फँसकर न रह जाए अपितु इतिहास को सुरक्षित रखते हुए उसमें साहित्यिक जीवतंता का संचार करे। यह एक जोखिम भरा दायित्व है। एतिहासिक कथानक उठाने पर नाटककार शोध के क्षेत्र में कदम रखता है तो उस शोध को साहित्यिक बनाने के लिए उसकी कल्पनाशीलता प्रयासरत रहती है।

हाल ही में दिल्ली के श्रीराम सेंटर में युवा नाट्य समारोह 21 से 26 नवंबर, 2016 के दौरान पहले ही दिन नाटककार प्रताप सहगल के नाटक 'अन्वेषक' का मंचन हुआ। यह नाटक महान् गणितज्ञ आर्यभट्ट के जीवन पर आधारित है। ऐतिहासिक वृत्त से जुड़े इस कथानक में नाटककार का मूल उद्देश्य इस ऐतिहासिक प्रतिभा के जीवन संघषें को सामने लाना रहा है। यों कभी किसी का ध्यान आर्यभट्ट के जीवन संघर्षों पर ज़्यादा गया ही नहीं। आर्यभट्ट जैसा आविष्कारक, इतिहास का नामचीन व्यक्ति और वैश्विक पहचान के व्यक्ति के जीवन का संघर्ष भी हो सकता है क्या?-'अन्वेषक' नाटक की कहानी इसी पर आधारित है। इतिहास के दरवाजे में दाखिल होकर जो सत्य सामने आता है वह यह कि नवीन प्रयोगकर्त्ताओं की राह सुगम और सरल कभी नहीं रही है। अपवाद भी हो सकते हैं पर अधिकांश प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व अपने नए प्रयोगों और सोच में परंपरागत ज्ञानधाराओं को चुनौती देते रहे हैं। प्रयोग इसी भूमि से दिशा पाता है। परंपरागत ज्ञानधाराओं को प्रश्नांकित करके नए आयाम खोजना जो वर्तमान की दृष्टि से ज़रूरी हों और भविष्य का मार्ग प्रशस्त करते हों। 'अन्वेषक' नाटक इसी भूमि से उठता है और कहीं न कहीं गिरीश कर्नाड के 'तुगलक' और ब्रेख्त के 'द लाइफ ऑफ गैलिलियो' की अगली कड़ी बन जाता है। तुगलक सिरफिरा कहलाया जाता है, गैलिलियो को नज़रबंद कर दिया गया और आर्यभट्ट भी इसी राह पर दिखाई देता है। योग्यताएँ जब परंपरा से नए उत्तर चाहने की दिशा में संधान करती हैं तो जड़ताएँ तुरंत सर उठाती हैं। उनका स्वागत होना तो दूर, उनके पक्ष की सिरे से उपेक्षा की जाती है।

'अन्वेषक' की राह में स्वयं अन्वेषक होता नाटककार

इस नाटक में इतिहास को सुरक्षित रखते हुए नाटककार ने आर्यभट्ट के किरदार को खड़ा किया है। 1992 में प्रकाशित हुआ ये नाटक नाटककार के लिए कोई सुगम प्रक्रिया नहीं रही। इसके लिए विभिन्न इतिहास, ग्रंथ और शोध-दस्तावेज़ों से निकालकर उसे आर्यभट्ट को रचना था। यों इतिहास से निकला विश्वप्रसिद्ध गणितज्ञ रचना क्या मुश्किल है पर नाटककार की रचना-प्रक्रिया का प्रधान पक्ष ये रहा कि उसे ऐतिहासिक खोल से शोध संलिप्त गणितज्ञ नहीं निकालना एक जीवित व्यक्ति पेश करना है और दूसरे प्रतिभाएँ, -प्रतिभा स्मारक बनने से पूर्व किन टूट-फूट से गुज़रती हैं उन्हें भी उद्घाटित करना नाटककार का मंतव्य रहा। नाटक तैयार होने के बाद और उसके कई पाठ के बाद भी नाटककार के भीतर एक गहन अतृप्ति के बोध ने जैसे 'अन्वेषक' की राह में एक नया अन्वेषक खड़ा कर दिया। इतिहास और साहित्य की रक्षा के दोहरे दायित्व से युक्त होकर आर्यभट्ट के जीवन को रचने वाले नाटककार ने नाटक से पूर्व एक लंबी भूमिका में साफ लिखा है-''जिसे इतिहास पढ़ना होगा, उसके लिए इतिहास की अनेक किताबें उपलब्ध हैं, पर यहाँ मकसद नाटक खड़ा करने का है। आर्यभट्ट का कोई चेहरा बने, कोई चरित्र बने, जो एक ऐसे आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्त कर सके,जिसे अपने नए-नए अन्वेषणों का विरोध झेलना पड़ा।'' नाट्यकर्मियों, आलोचकों और रचनाकारों के सुझावों से संतुष्ट न होकर नाटककार ने इतिहास को सुरक्षित रखते हुए आर्यभट्ट को दोबारा रचने का जोखिम उठाया। इस बार प्रश्न और धारदार रूप में सामने आए।

योग्यताएँ क्यों अभिशप्त हैं स्वनिर्वासन या निर्वासित किए जाने को? नाटक 'अन्वेषक' को देखकर यही सवाल दर्शकों के मन में खदबदाता है। कल्पना की उमंग को थामकर, यथार्थ की धरती को थामे, भविष्य की सु.ढ़ नींव के साधकों को हर बार परम्पराविमुखता के घातक आघातों का शिकार क्यों होना पड़ता है? प्रतिभाएँ यदि

परंपरा के पालों को लाँघती है, प्रथाओं, जड़ताओं को प्रश्नित करती हैं तो वर्चस्व या तो उन्हें पाले में घसीट लाता है नहीं तो निर्वासित करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखता है। आर्यभट्ट जो अपने शोध के लिए नालंदा में कुलपति पद का राजा बुधगुप्त का न्यौता ठुकराता है और वेधशाला और शोध के प्रति अपनी निष्ठा को दुहराता है। ''दोनों कार्यों के साथ न्याय हो सकेगा। मुझे अपना शोध पूर्ण करने दें, उसके लिए मैं कुसुमपुर चला जाऊँगा और प्रयोग वेधशाला में ही करूँगा। विश्वविद्यालय के कुलपति का पदभार अभी नहीं सँभाल पाऊँगा, क्षमा करें।'' जो शोध की राह में महामात्य की बेटी केतकी के विवाह प्रस्ताव को भी प्राथमिकता नहीं देता उस आर्यभट्ट की राह को तथाकथित विद्वान चूड़ामणि और चिंतामणि बाधित करते हैं। आर्यभट्ट की राह के ये दोनों अवरोधक यों अपने नाम से बिल्कुल विपरीत काम करते हैं। यह एक सामाजिक विरोधाभास को भी दिखाते हैं कि पद, नाम, सत्ता से यह ज़रूरी नहीं कि उसके कर्म और व्यवहार का सीधा रिश्ता हो। चिंतामणि और चूड़ामणि दोनों ही अपने नाम और पद के विपरीत आचरण करते हैं। आर्यभट्ट की प्रतिभा के स्वीकार में कई पेंच हैं जो यह नाटक के संवादों की तह से उजागर होते हैं। पहले ही अंक में आर्यभट्ट–केतकी संवाद और चिंतामणि–चूड़ामणि संवाद को इस संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

चिंतामणि–चूड़ामणि संवाद से जो सत्य उद्घाटित होता है वह बहुपर्ती है। उसमें एक ओर वय बनाम योग्यता की सतह है। वय में कम होते हुए भी क्योंकर आर्यभट्ट की श्रेष्ठता का सामाजिक स्वीकार्य बने। ''यह कल का छोकरा हम जैसे महाविद्वानों पर शासन करेगा।'' चिंतामणि एकांत में चूड़ामणि से उसकी विद्वता की प्रशंसा भी करता है पर खतरा यह है कि यदि वास्तविक प्रतिभा को स्वीकार मिला तो छद्म प्रतिभाओं का सत्य भी सामने आ जाएगा। खतरा सिर्फ आर्यभट्ट के ज्ञान से ही नहीं है अपितु ज्ञान के साथ उसे प्राप्त होने वाले संभावित लाभ से भी है। नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति के पद जिस पर कई गिद्ध निगाहें वर्षों से जमी हैं उसे पुराने घाघों की बजाय राजा बुधदेव वास्तविक प्रतिभा को पद सौंपना चाहता है। यह दरबार के ज्ञान–गिद्धों को गवारा नहीं। जबकि आर्यभट्ट पद का अस्वीकार भी करता है पर समस्या यही है कि जिस ज्ञान के आधार पर आर्यभट्ट निरंतर वृद्धि कर रहा है वह आधार ही मिटा दिया जाए। उसके शोध मार्ग में भी मुश्किलें खड़ी की जाएँ। ज्ञान से पद तक पहुँचने की सम्मानजनक प्रक्रिया को षडयंत्रकर्त्ता किस तरह योग्यताओं की बेदखली और पद की गरिमा से खिलवाड़ का जरिया बनाते हैं नाटक सामने लाता है। यही नहीं षडयंत्रों का चक्र अनेकानेक युक्तियाँ लगाकर प्रतिभा को सम्मानित न किए जाने के लिए कृतसंकल्प दिखाई देता है। चूड़ामणि और चिंतामणि के समक्ष आसन्न संकट ये भी है कि राजा प्रतिभाओं के सम्मान का पक्षधर है। वह ज्ञान के क्षेत्र में नए अनुसंधानों को प्राथमिकता देता है। ये सही है कि उसका आर्यभट्ट से मित्रतापूर्ण संबंध है पर यही संबंध कुचक्र रचयिताओं की आँख की किरकिरी है। इतना ही नहीं आर्यभट्ट के निजी जीवन में भी प्रवेश करने को वे स्वतंत्र हैं। केतकी से विवाह जैसी बात को भी उनकी दृष्टि केतकी–महामात्य पुत्री–राजा के त्रिकोणात्मक संबंध में देखती है। वह भावी का अनुमान लगाकर खुद को घाटे में पाती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो अंकों का अध्ययन करने वाली मनीषा आर्यभट्ट से बड़े गणितज्ञ चिंतामणि और चूड़ामणि ही ठहरते हैं। सारी पक्ष–विपक्ष का अनुमान करते हुए वह ब्रह्मास्त्र के रूप में विद्वत परिषद के सदस्य के अपने अधिकार के प्रयोग की बात से स्वहित में निश्चिंतता का मौका भी खोज लेते हैं। इनके माध्यम से ज्ञानविरोधी वह चरित्र सामने आता है जिसकी मंशाएँ एकदम साफ हैं या तो प्रतिभा को प्रश्नित करके, राजा ही प्रतिभा को निर्वासित कर दे या प्रतिभा प्रतिकूलताओं से टूटकर स्वनिर्वासन को विवश हो जाए। इस नज़रिए से देखें आर्यभट्ट किसी एक व्यक्ति का आख्यान नहीं है।

सत्ता का ज्ञान को प्रश्रय देना क्यों अनुचित?

नाटक आर्यभट्ट की सत्ता से नज़दीकी का पक्ष भी उठाता है। यहाँ सबसे मुख्य बात जो मेरे दर्शक–पाठक मन को समझ आती है कि यदि योग्यता का समयोचित सम्मान हो और शासन सभी बाधाओं को दूर करके योग्यता को प्रमुखता दे (जिसकी संभावनाएँ अधिसंख्य समाजों में न्यून हैं) तो एक सुचिंतित विकल्प की नींव रखी जा सकती है। ज्ञान को स्वाधीन आकाश देने वाला शासन एक स्वप्न ही है। 'अन्वेषक' इस स्वप्न की बुनियाद रचता है। पहले दृश्य से ही नाटककार का इस स्वप्न को यथार्थ बनाते दिखाता है। बुधदेव के रूप में प्रतिभा का सम्मान ही नहीं किया जाता बल्कि उसके पक्ष में पुरज़ोर सचेत कार्यवाही की जाती है जो पूरे नाटक का हिस्सा है। बुधदेव की आवाज़ आर्यभट्ट के लिए नहीं ज्ञान के लिए खड़ी होने वाली बहुत ठोस आवाज़ है। यह व्यक्ति नहीं विचार की जीवित आवाज़ है। इस आवाज़ को न विरोधियों की चालें गलाती हैं, न षड्यंत्रकारियों के कुचक्र खत्म कर पाते हैं। नाटक के आलेख के दौरान नाटककार को एक सुझाव ये भी मिला था– ''बुधगुप्त को सत्ता–प्रतीक और आर्यभट्ट को सत्ताविरोधी प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया जाए तो बेहतर होगा।'' यहाँ तक कि बुधदेव द्वारा आर्यभट्ट की हत्या करवाने के सुझाव भी मिले पर नाटककार के मन ने इतिहास की हत्या करना गवारा न किया। यों भी बुधदेव सरीखे अपवाद एकाध ही हैं। वे एक ओर अपवाद हैं और दूसरी ओर आदर्श भी जो अक्सर वास्तविकता के धरातल पर आते ही खंडित किए जाते हैं। नाटक में बुधदेव एक बड़ी मानवीय आकांक्षा का मूर्तिमान रूप है।

नाटक में शासन का सिरमौर भले ही ज्ञान के वास्तविक पात्र को सम्मानित करना चाहता है। पर सत्ता के नीचे पलतीं अनेक सत्ताओं के अपने समीकरण हैं। वे निरंतर दबाब बनाती हैं कि सत्ताएँ प्रतिभाओं के मार्ग सुगम न करें। सत्ता और प्रतिसत्ता की मुठभेड़ पूरे नाटक में चलती है। आरंभ से ही यह मुठभेड़ संवादों में निहित तनाव की शक्ल में सामने आती है। मध्यांतर से पहले और मध्यांतर के बाद तनावों की छोटी–बड़ी शृंखलाएँ राजाज्ञा और उसके विरोध में दिखाई देती है। हूणों के हमले में भले ही कुछ समय ये तनाव बाह्य रूप से नहीं दिखता पर इसकी भीतरी सतह पूरे नाटक में

अपनी ज़मीन नहीं छोड़ती।

विद्वता के ठेकेदारों द्वारा ही क्यों कुंठित होती हैं योग्यताएँ?

नाटक में चूड़ामणि-चिंतामणि के संवादों में नाटककार की रचनात्मकता छलाँग मारती दिखाई देती है। उनके कुटिल चरित्र को न सिर्फ नाटककार ने भाषा दी है बल्कि संवाद की शक्ल में उसे इस कदर निखार दिया है कि नाटक में अभिनेता और निर्देशक को भी सहूलियत मिलेगी। चिंतामणि-चूड़ामणि का किरदार भले ही नकारात्मक हो पर उनका जो रूप नाटककार ने गढ़ा है वह अभिनीत होकर प्रशंसित होने के लिए ही बना है। उन दोनों के नकारात्मक चरित्र को गूँथने वाली भाषा, भाव और भंगिमा तीनों रूपों में एक कारगर असर छोड़ती है। कहीं विद्रूप, कहीं व्यंग्य, कहीं घातें, कहीं उकसावे और कहीं हास्य-सब बड़े कौशल से रचे गए हैं। नाटक में विद्वता के ये दोनों ठेकेदार जिसे मैंने इस लेख में प्रतिसत्ता की संज्ञा दी यह सत्ता योग्यता से बराबर जिरहरत है। वह अपने छल-बल से आतंकित करती है। कभी वय, कभी परंपरा उपहास, कभी अधर्म के कोने से सिर उठाती है योग्यता को मिटाने के लिए। यहाँ विद्वानों के दो चेहरे भी नाटक में उजागर हुए हैं। ज्ञान की वास्तविक भूमि पर 'आर्यभटीय' का अध्ययन करने वाले शिष्यों-निशंकु और लाटदेव को आर्यभट्ट मित्र कहता है तो दूसरी ओर थोथी ज्ञानधारा वास्तविक प्रतिभा का नकार करती है। वह आर्यभटीय के प्रचार-प्रसार को रोकने का संकल्प लेती है यानी ज्ञानवान होने के पद को ये तथाकथित विद्वान कलंकित भी करते हैं और उस राह को नियंत्रित भी।

ये प्रतिसत्ता खास तरह का पारिस्थितिकी तंत्र रचती हैं। जैविक पारिस्थितिकी तंत्र की भाँति ही यह तंत्र एक छोटे से जीवाणु से लेकर एक बड़े जीव तक से जुड़ा हुआ रहता है। ये प्रतिसत्ता उसे पोषित करती है। विद्वत परिषद में एक मतभेद को मतैक्य में रूपांतरित करना हो, सूर्यग्रहण के वैज्ञानिक सच को अधर्म की रंगत दे देना, उसे ब्राह्मणवाद के विरोध का हथियार बनाकर जन-असंतोष को उभारना और भीड़ बनी जनता को हत्यारी संस्कृति में तब्दील करके राष्ट्रद्रोह के आरोप में आर्यभट्ट के प्रति शारीरिक हिंसा रचने का पूरा तंत्र उभरता है। नाटक में सामंतवाद- जातिवाद, सम्प्रदायवाद, धार्मिक संकीर्णता से किस रूप में जुड़ता चलता है इसकी कड़ियाँ कई रूपों में सामने आती हैं।

विद्वता के ठेकेदार दरअसल स्वयं सत्ता प्रतिष्ठान बन जाते हैं तो उनके लिए वास्तविक विद्वान साक्षात खतरा दिखाई देता है और साथ ही सत्ता से जुड़े लाभ भी खतरे में पड़ते दीखते हैं। इसीलिए परंपरा के नवोन्मेष को सामने लाने वाली मौलिक प्रतिभाओं को परंपरा- विद्रोह की दुहाई देकर ये प्रतिष्ठान विद्वता को कुंठित करते हैं। वे अपने चरित्र में इस कदर क्रूर हैं कि मानसिक ही नहीं शारीरिक हिंसा तक से उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। नाटक के आरंभ से ज्ञानविरोधी कुचक्रों को अपने तार्किक विवेक से तोड़ने का निरंतर प्रयास आर्यभट्ट करता है। यहाँ नाटककार एक बर्हिमुखी जुझारू बौद्धिक के रूप में उसे गढ़ता है पर निरंतर नकार की घातक चालों में बुधदेव द्वारा सामाजिक स्वीकृति का वातावरण रचने और चूड़ामणि-चिंतामणि को राजद्रोह के आरोप में बंदी बनाने के बावजूद अंततः आर्यभट्ट बिना किसी सूचना के राज्य से चला जाता है। (सिर्फ केतकी से वह अपनी बात का खुलासा करता है क्योंकि उसके प्रति आर्यभट्ट अपनी नैतिक जवाबदेही समझता है।) इस अनिश्चय पर खत्म हुआ नाटक उसके स्वतंत्र निर्णय के साथ कहीं न कहीं उसके अंतर्मन की टूटन और कुंठित किए जाने की कार्यवाही को पुष्ट करता है। यह नाटक प्रोटेगनिस्ट के बहिर्मुखी से अंतर्मुखी होने की यात्रा का भी परिचायक बनता है। बहुत समय पहले निर्देशक तपन सिन्हा की 'एक डॉक्टर की मौत ' फिल्म का याद हो आना इस संदर्भ में बेहद स्वाभाविक है।

अभिनय-शिल्प और निर्देशन पक्ष

शिल्प की दृष्टि से देखें तो यह नाटक शिल्प की दृष्टि से काफी कसा हुआ है। जहाँ एक ओर इसकी भाषा वर्तमान से अतीत की यात्रा कराती लगती है वहीं पाँचवी शताब्दी के आर्यभट्ट का पूरा समय भी सामने ले आती है। पर संस्कृतनिष्ठ कलेवर में भी यह नाटक गूढ़ अभिव्यक्ति का जंजाल नहीं बनता दर्शकों के लिए। इसी तरह 'आर्यभटीय' को सामने लाने पर नाटककार ने विस्तृत शोध का अनावश्यक मोह त्यागकर संक्षेप में उसमें निहित सामग्री का उल्लेख कर दिया है। भाषाई कौशल के संदर्भ में केतकी-आर्यभट्ट प्रेम संवादों में कविता और कल्पना का मेल भी भाषा को एक और फलक प्रदान करता है। अंक और कल्वना की भाषा और दोनों का मिलकर सम्प्रेषण तक पहुँचना कोड को डीकोड करने की सुंदर व्याख्या सरीखा है।

''आर्यभट्ट: तुम काव्य की भाषा बोलती हो और मैं अंकों की भाषा समझता हूँ। केतकी : मैं भी समझ गई हूँ अंकों की भाषा। आर्यभट्ट : तब सम्प्रेषण की समस्या हल हुई।''

इस नाटक के शिल्प के संदर्भ एक पुराने साक्षात्कार में नाटककार प्रताप सहगल ने कहा था-'' खाली संवादों में रचना खड़ा कर देना नाटक नहीं है उसमें जो ड्रामेटिकल एलिमेंट्स हैं, नाटकीयता है, एक शब्द है जो नाटकीय गति को भी आगे ले जाता है। उस शब्द की ज़रूरत होती है। उसके साथ-साथ एक ऐसी समझ की ज़रूरत होती है कि जब कुछ अनपेक्षित घटता है तो वह पाठक या दर्शक को अपनी पकड़ में लेता है कि ऐसा तो मैंने सोचा ही नहीं था। अगर ये भाव आता है तो यह नाटकीय तत्त्व है।'' नाटककार के इस कथन को नाटक से जोड़कर देखें तो ये नाटकीय तत्त्व दर्शक की दृष्टि से ओझल नहीं होते। जैसे राजा बुधदेव का आर्यभट्ट को लगातार समर्थन, आर्यभट्ट का कुलपति पद से इंकार,राजाज्ञा के बावजूद आर्यभटीय का प्रचार-प्रसार का रूकना, राजा पर पक्षपात का आरोप, सभा में आर्यभट्ट के पक्ष का अचानक पलट जाना और राजभवन में चिंतामणि और चूड़ामणि का दबाव डलवाना, हूणों से जीत के बाद चिंतामणि-चूड़ामणि का आर्यभट्ट विरोध और अंत में सारी दिक्कतों को पार करने के बाद आर्यभट्ट के पक्ष में राजाज्ञा के बावजूद आर्यभट्ट का स्वनिर्वासन। समूची घटनाएँ बार-बार नाटकीयता का सृजन करती हैं।

नाटक यों तो अपने कलेवर में संवाद,गीत, घटनात्मक द्वंद्व की निमिर्ति करता चलता है पर चिंतामणि-चूड़ामणि के जनता को भड़काने और ब्राह्मणवाद की ध्वजा फहराने के दृश्य में नाटक अचानक

नुक्कड़ नाटक में काम आने वाली युक्तियों से सहज जुड़ जाता है। मंच पर विरोध की धारा का नारे लगाते हुए प्रदर्शन और सहसा ही इस प्रसंग का वर्तमान समाज की धर्मांधता और अंधविश्वास से जुड़ जाना नाटक को समकालीन स्वर देता है। पाँचवी शताब्दी की कथा कैसे 2016 की कथा बन जाती है, नाटक इस पूरी कड़ी को दर्शक के सामने ले आता है। ''धर्म की रक्षा-हम करेंगे, हम करेंगे! धर्म के लिए हम मरेंगे, हम मरेंगे! या फिर-'' ब्राह्मण धर्म को जो तोड़ेगा, वही हमारा शत्रु है! संस्कृति के शत्रुओं से -सावधान, सावधान।'

इस पूरे दृश्य की संरचना मंच पर नुक्कड़ के उतर आने जैसे थी। दृश्य अनेक धर्मांध सेनाओं को मंच पर रच देता है पर नारों के अति उत्साह में 'ब्राह्मणवाद ज़िंदाबाद' जैसा नारा नाटक के समय और भाषा के हिसाब से अनुचित जान पड़ा।

दृश्य रचने में एक मौलिक प्रयोग निर्देशक ने और भी किया है। नाटक में विद्वत परिषद् से पहले नट-नटी का गीत आता है-' जिसके पास नहीं कोई सपना! उसका जीना भी क्या जीना विश्वास हमारा है विश्वास हमारा है''

नाटक में इस गीत के बाद आठवें दृश्य में विद्वत परिषद् का दृश्य आता है पर निर्देशक ने गीत के दौरान ही विद्वत परिषद का दृश्य रच दिया। नटियाँ गीत गाती हुईं पाटी बिछाती हैं और आर्यभटीय की पाँडुलिपियाँ उस पर सजाती हैं। पूरे नाटक में मंच पर एक उठा हुआ मंच स्थायी रूप से बना रहता है जिसे कभी दरबार और कभी गलियारा और बागीचा बना दिया जाता है। अनेक बार स्क्रीन के माध्यम से बगीचे और सुबह के दृश्य भी रचे गए।

नाटक के आरंभ में रंगमंच के जयघोष पर आधारित गीत संस्कृत नाट्यशास्त्र की परंपरा से जुड़ता है वहाँ गान के बाद ही नट-नटी प्रसंग आपको वर्तमान की दहलीज़ पर लाकर नाटक दिखाने का तर्क प्रस्तुत करता है। इसमें निर्देशक ने बातचीत का क्रम रचते हुए नोटबंदी का कथन जोड़कर उसे बिल्कुल आज के समय से अतीत में ले जाने का काम किया। युवा नाट्य समारोह के दौरान अतुल जस्सी के निर्देशन में हुए इस नाटक में निर्देशक ने एक और नया प्रयोग किया। यहाँ भी गीत है, नटी संवाद है पर सबसे पहले स्क्रीन पर ब्रह्माण उभरता है और साथ ही रिकार्डिड संगीत बजता है। सौरमंडल की पूरी यात्रा के दौरान दर्शक-दीर्घा से आर्यभट्ट चलते हुए स्क्रीन के ऐन सामने आता है। मानो सौरमंडल का हिस्सा हो। एक त्रीडी इफैक्ट देने की कोशिश निर्देशक ने की है। हालाँकि ये संगीत और दृश्य अपनी अवधि में काफी खिंचता जाता है बावजूद इसके दृश्य प्रभावी बनता है। इसी तरह नाटक का अंत नाटककार ने आर्यभट्ट के स्वनिर्वासन के बाद उसके लिखे एक पत्र से किया है। जहाँ मंच पर पूरी सभा फ्रीज होती है और आर्यभट्ट का चेहरा और आवाज़ उभरते हैं। पत्र के बाद रौशनी केतकी पर पड़ती है और नाटक का अंत होता है। पर इस प्रस्तुति में पत्र समाप्ति के बाद फिर से स्क्रीन पर ब्रह्माण का उभरना और आर्यभट्ट का 'आर्यभटीय' को जनता को सौंपने पर यह नाटक समाप्त होता है। निर्देशक अतुल जस्सी ने इस प्रकार इस दृश्य को जिस मौलिक रूप में रचा वह व्यापक संदेश देता है। सच्चे अन्वेषक का श्रम देर-सबेर अपनी ठोस सच्चाई के साथ विश्वसनीय आधार पाता है। इस तरह मूल नाटक में आर्यभट्ट के स्वयं को अन्वेषक के रूप में याद रखे जाने वाले कथन पर समाप्त होता है तो दर्शक-पाठक के भीतर एक उदासी तैरती है। ये उदासी आर्यभट् की उदासी का विस्तार है पर नाटक के नवीन प्रदर्शन में आर्यभटीय को दर्शकों को सौंपने के दृश्य में निराशा के बीच से आशा का संचार होता है। इस संदर्भ में जब नाटककार प्रताप सहगल से चर्चा हुई तो उनका कहना था-'' यह इस नाटक की तीसरी प्रस्तुति है। सबसे पहले इसका मंचन अखिलेश अखिल ने भोपाल और फिर पूर्णिया में किया था। उसके बाद दिल्ली में सतीश आनंद ने 2003 में साहित्य कला परिषद के रंगमंडल के साथ श्रीराम सेंटर में ही किया। दोनों मंचन मैंने देखे हैं और दोनों की व्याख्या तथा प्रस्तुति में कुछ अंतर हैं। सतीश आनंद ने संगीत एवं नृत्य के साथ इसका मंचन किया था। नटी-नट के दृश्य बेहतर बने थे। सतीश ने मल्टीमीडिया का इस्तेमाल लगभग नहीं किया था जबकि अतुल ने किया है। सतीश की प्रस्तुति का अंत आर्यभट के चले जाने के साथ नाटक के गीत की दो पंक्तियों से होता है जबकि अतुल ने अंत में आर्यभट को आर्यभटीय लेकर समाज को समर्पित करते हुए अंत दिखाया है. मुझे अतुल का अंत ज़्यादा अच्छा लगा।'' पर इस प्रस्तुति में उच्चारण, अभिनय, पॉज़, कोरियोग्राफी आदि कमियों के मद्देनज़र नाटककार, सतीश आनंद के निर्देशन को अब तक 'अन्वेषक' की सफलतम प्रस्तुति में रखते हैं।

नाटक के अभिनय पक्ष की बात करें तो राजा बुधदेव की भूमिका में रमेश खन्ना, चिंतामणि की भूमिका में रवि तनेजा, चूड़ामणि की भूमिका में ऋषि शर्मा और आर्यभट्ट की भूमिका में गौरव ग्रोवर का अभिनय प्रशंसनीय रहा। नटियों की भूमिका में शोभा, संगीता और शालू का अभिनय जहाँ ऊर्जा से भरपूर था वहाँ प्रमुख किरदार केतकी की भूमिका में प्रीति शर्मा का अभिनय और स्वर प्रवाह प्रभावित नहीं कर पाया। उनकी प्रस्तुति सपाट रही। इस प्रस्तुति की खासियत ये भी रही कि इसके मुख्य पात्र प्रौढ़ वय के अभिनेता थे। (आर्यभट्ट को छोड़कर) हालाँकि नाटक में वय नहीं अभिनय प्रमुख होता है पर इस प्रस्तुति में वय के कारण अनुभव की प्रौढ़ता और बॉडी लैंग्वेज भी अपना असर छोड़े बिना नहीं रही। खासतौर पर रमेश खन्ना और रवि तनेजा की मंच उपस्थिति। जगदीश और दालचंद की वेशभूषा परिकल्पना इस प्रस्तुति के साथ न्याय कर सकी।

ये नाटक आर्यभट्ट के समय के सवालों को उठाता है पर खासियत ये कि आज के अन्धकार को भी चीरता है। परम्परा पोषित भक्तगणों का धर्मरक्षा का मुद्दा देश से ऊपर जाता है और नाटक में राजा बुद्धदेव और आर्यभट्ट देश के लिये परम्परा की पुनर्व्याख्या के पक्ष में रहते हैं। एक तरफ जड़ ब्राह्मनवाद के जीवित वंशधर तो दूसरी और नव्यस्थापनाओं के जनक। एक और प्रतिगामी शिक्षा के पैरोकार तो दूसरी और प्रगतिशील शैक्षिक मूल्यों के आग्रही। पूरे तनाव को अपने धारदार संवादों में वहन करते इस नाटक ने संकटग्रस्त वर्तमान की अनेक छवियों से साक्षात्कार कराया।

❑❑❑

ई-112, आस्था कुंज अपार्टमेंट्स
सेक्टर -18, रोहिणी, दिल्ली-89

पेपर से पर्दे तक...

सिनेमा एक कला और तकनीक

कृष्णकांत पंड्या

(कृष्णकांत पंड्या एक जाने-माने फिल्म निर्देशक हैं, जिन्होंने पूर्व में इस्माइल श्राफ के साथ सहायक निर्देशक के रूप में थोड़ी सी बेवफाई, आहिस्ता-आहिस्ता, दिल आख़िर दिल है, झूठा सच, लव 86 जैसी फिल्में कीं। फिल्म हत्या के एसोसिएट निर्देशक रहे और सूर्या फिल्म के चीफ एसोसिएट निर्देशक रहे। निर्देशक के रूप में उन्होंने पनाह और बेदर्दी जैसी फिल्मों का निर्देशन किया। इसके अलावा उन्होंने कई टीवी सीरियल्स का भी निर्देशन किया जिनमें रानी पद्मिनी, पृथ्वीराज, श्रीकृष्णा आदि धारावाहिक प्रमुख हैं। वे अभी भी फिल्मों में सक्रिय हैं तथा उनकी निर्देशित की हुई दो फिल्में शीघ्र रिलीज़ होने वाली हैं। एक फ़िल्म बियाबान द कर्स बाय वीमन को फ़िल्म फेस्टिवल्स में काफी सराहना मिल रही है। शिवना साहित्यिकी के पाठकों के लिये वे धारावाहिक रूप से फिल्मों में लिखने की प्रक्रिया, स्क्रिप्ट, संवाद आदि के बारे में जानकारी देंगे, जिससे लेखकों को फिल्मों के लेखन के बारे में जानकारी मिल सके।)

कहानी सुनना, पढ़ना व फिल्म के पर्दे पर देखना तीनों अलग प्रकार का आनन्द देते हैं, सबसे ज़्यादा मनोरंजक व आनन्द दायक कहानी को पर्दे पर देखना हैं, क्योंकि पर्दे पर दृश्यों के बदलने के साथ-साथ, हाव-भाव की बारीकियाँ, मौसम की उपस्थिति, संवाद, संगीत-गीत, पार्श्व संगीत, केमेरा मूवमेन्ट ये सारी चीज़ें मिलकर एक फेंटेसी का भावनात्मक माहौल बनाती हैं जो हम को जीवन के सभी रसों का आनन्द देती हैं, यहाँ तक कि गरम-गरम परोसा हुआ खाना देख कर भूख लग जाती है जनाब!!!

फिल्म के पर्दे पर कहानियाँ तो सन् 1860 में टोमस अल्वा एडिसन, एडविन स्टेन्टोन और डेविड वार्क ग्रेऊिक के फिल्म के आविष्कार व एडिसन द्वारा कैमरे के अविष्कार द्वारा पहले पर्दे पर दिखाई जाने लगी। सबसे पहले फ़ोटो द्वारा गतिभ्रम फिलेडेल्फिया, अमेरिका के मेकेनिकल इन्जीनियर कोलमेन सेलर्स ने महसूस किया। वो छोटी-सी कहानी या घटना कहें, तो उसके अपने बेटे द्वारा कील ठोंकने की क्रिया की थी।

कहानी को सुनाने की कला हमने हमारी नानी, दादी, दादा या माता-पिता से सीखी है और पीढ़ी दर पीढ़ी विश्व के हर कोने में जारी है और रहेगी। इन कहानियों में भी सुनाने वाले की घटनाक्रम को उसके हाव-भाव व आवाज़ के उतार-चढ़ाव के साथ सुनाने की कला पर निर्भर करता है, ताकि कहानी प्रभाव पैदा कर सके। इसमें इस बात का भी ख़याल रखा जाता है कि हर घटना को दूसरी से कैसे जोड़ा जाए, कि कहानी रुचिकर होने के साथ आगे बढ़ती जाए और सुनने वाले को विविध प्रकार की भावनाओं के प्रवाह में लेजाकर सफलता पूर्वक कहानी समाप्त की जाए।

पंकज सुबीर जी की एक बात का उल्लेख मैं इस संदर्भ में करूँगा जो उन्होंने फेस बुक की एक पोस्ट में लिखी थी, उन्होंने लिखा था कि, कहानी लिखने की कला उन्होंने अपनी नानी से सीखी, जो एक कहानी को पूरी रात भी सुना सकती थीं, तो उसी कहानी को 5-10 मिनट में भी ख़तम कर देती थी, उनकी इस कला का अन्दाज़ा मैं पंकज जी की कहानी लिखने की अद्भुत कला और शिल्प से लगा सकता हूँ। ऐसा ही कुछ फ़िल्मों में भी है। रईस फ़िल्म की कहानी गुजरात के एक मशहूर लिकर माफ़िया की सच्ची कहानी पर आधारित है। अब इसी कहानी के किरदार की न्यूज़ भी बनी थी- छोटी-सी, फिर थोड़ी बड़ी न्यूज़ भी बनी और डॉक्यूमेण्ट्री भी बन सकती थी, शायद बनी भी हो, या नहीं, ज्ञात नहीं। उस पर शार्ट फिल्म जो 7 से 40 मिनिट की होती हैं वो भी बन सकती थी, और शाहरुख खान को लेकर रईस जैसी बड़े बजट की फ़िल्म भी बन गई जो करीब ढाई घंटे की। तो है ना नानी की कहानी जैसी बात ऐसी ही होती है कहानी पेपर पर लिखने की कला, जिसे विश्वभर के साहित्यकारों ने अलग-अलग तरीकों से किया जिससे पाठक का मनोरंजन भी हो व कुछ सीख भी मिले।

पटकथा की बात की जाय तो मेरे प्रिय, स्नेही, मृदु भाषी, सुप्रसिद्ध व जन साधारण के लिए 176 उपन्यास लिखने वाले श्री वेद प्रकाश शर्मा जी का मैं लोहा मानता हूँ। उनका कोई भी उपन्यास लीजिए उनमें दृश्य, दृश्यों का संयोजन और कहानी का बहाव इतना रुचिकर है कि उपन्यास को छोड़ने का मन ही नहीं करता जब तक आप उसके अन्तिम शब्द तक नहीं पहुँच जाते। एक फ़िल्म निर्देशक के नाते मैं ये कह सकता हूँ कि उनके किसी भी उपन्यास पर रुचिकर थ्रिलर फिल्म बन सकती है। करीब 35 वर्षों के लेखन काल में वेद जी द्वारा 176 उपन्यास अपने नाम से और करीब 200 उपन्यास दूसरों के नाम से लिखे और जिनकी प्रतियों की संख्या करीब 12-13 करोड़ रही होगी। (8 करोड़ तो वर्दी वाला गुंडा की ही बिकी हैं और उनके पुत्र व उपन्यास लेखक शगुन शर्मा के मुताबिक और गूगल से प्राप्त जानकारी के अनुसार उनके उपन्यासों की एडवान्स बुकिंग हो जाती थी जिसकी वजह से दो-ढाई लाख प्रतियाँ ओपनिंग में ही बिक जाती थी।) इतने कम समय काल में ये किसी चमत्कार और अद्भुत शक्ति का परिणाम है जो उन्हें प्राप्त थी। पटकथा लेखन के माहिर वेद प्रकाश जी ने बहू की आवाज़, सबसे बड़ा खिलाड़ी, इन्टरनेशनल खिलाड़ी जैसी करीब 6 फिल्मों को लिखा, अगर वे मुम्बई में रहते तो ये संख्या भी सैंकड़ों में पहुँच

जाती, वे आमीर खान के लिए अभी लिख भी रहे थे। मेरे साथ भी 3-4 बार मौके आए पर साथ काम हो नहीं पाया वर्ना सस्पेन्स थ्रिल, गिमिक्स, मिस्ट्री जैसे लेखन से काफी मनोरंजन हम कर पाते। व्यावसायिक सिनेमा हो चाहे सामाजिक, उनकी लेखनी में घटनाओं के नवीनकीरण की खूबी कमाल की है। जितना हिन्दी साहित्य के लिए मुंशी प्रेमचन्द जी आवश्यक हैं उतना ही देवकी नन्दन खत्री जी (चन्द्रकान्ता, भूतनाथ) और वेद प्रकाश शर्मा जी आवश्यक हैं, और फिल्मों के लेखन के लिए भी उन्हें आदरान्जलि।

फिल्म लेखन में सच्ची कहानियों पर कई फिल्में बनी, जिनमें भाग मिल्खा भाग, पान सिंह तोमर, नो वन किल्ड जेसिका, तलवार (आरूषी हत्या कांड), नीरजा, रईस, दंगल, और गाज़ी अटैक (पिछले दिनों रिलीज़) प्रमुख हैं। हर साल बनती आ रही हैं वैसे तो पर पाठकों के लिए ये नाम अभी परोसे हैं.... हाँ, परोसे हैं, आप चाहें मुझे प्रोत्साहित करें ना करें अपनी प्रतिक्रियाओं से पर, मैं अपने ज्ञान को इमानदारी से पूरा परोसूँगा... दंगल और रईस सुपर स्टार्स की फिल्में है। व्यवसायिकता के लिए दोनों में छेड़-छाड़ की गई है। जहाँ दंगल में आख़िर में आमिर ख़ान के किरदार को कमरे में बन्द करवा कर कोच को पूरा नेगेटिव कर दिया है; वहीं इमोशन्स के लिए बाप के किरदार से सिम्पेथी बटोरी गई है और पहलवान बेटी को पिता के अनुपस्थित होने पर भी जो कि उसे इशारों से दाव पेंच बताता, जीत दिलवाकर दर्शकों को उत्साह बटोरा है। वास्तव में ऐसा नहीं हुआ था, गीता फोगट की विजय के दौरान, पर क्योंकि हीरो आमिर ख़ान है जो पिता का रोल निभा रहे हैं और वैसे भी सच्ची, कहानी में लड़कियों का पिता आम ज़िंदगी का हीरो है, इसलिए फिल्म के क्लाइमेक्स में वो अगर गायब होते तो दर्शक हतोत्साहित हो जाते कि भाई आमिर तो क्लाइमेक्स में है ही नहीं। इन पहलुओं का फिल्म की पटकथा में ख़याल रखना आवश्यक है, परन्तु अब एक पहलू मेरा भी है और वो ये कि अगर आमिर दर्शक दीर्घा में होते, जहाँ गीता उन्हें देखना चाहती थी और वो वहाँ से वो सब कुछ इशारों से समझाते रहते, जो गीता की जीत

के लिए आवश्यक था, तो दर्शकों को आनन्द भी आता। गीता वो सब तरीके इस्तेमाल नहीं करना चाहती थी जो कोच चाह रहा था। वो चाहता था कि गीता आक्रामक खेले ही नहीं बल्कि बचाव का खेल ही खेले जिससे उसको पॉइन्ट्स का नुकसान ना हो तो फायदा भी ना हो, पर पिता पॉइन्ट्स ज़्यादा मिलें ये चाह रहा था। यानी कि एक टक्कर रिंग के अन्दर हो रही थी तो दूसरी बाहर होती कोच और पिता के बीच। इससे दर्शकों का मनोरंजन ज़्यादा होता, वो ज़्यादा उत्साहित होते न कि भावुक। क्योंकि कहानी का अंत ज़्यादातर दर्शकों को पता था कि गीता फोगट विजेता है, इसलिए इस दुविधा का मतलब नहीं था कि गीता जीतेगी या नहीं। ये मेरा पटकथा के लिए मन्तव्य मात्र है, वैसे दंगल एक सच्ची कहानी पर बनी सफलतम फिल्म है, उसकी सफलता क्लाइमेक्स के दोनों रूपों में निहीत थी। वैसे भी एक विजेता के संघर्ष की कहानी पर फिल्म सफल स्टार और मशहूर व समझदार प्रोडक्शन हाउस बनाता है, तो फिल्म का सफल होना और अच्छा बनना तय है। यही रईस ठीक-ठीक सफल फिल्म है, पर इसकी पटकथा 80 के दशक की एक्शन फिल्मों की लकीर पर ही है और गुजरात के उस समयाकाल को भी पूरी इमानदारी से प्रस्तुत नहीं किया गया। हाँ घटनाओं में गति है पर ऐसा दर्शक कई बार देख चुका है, नवीनता नहीं हैं। पटकथा लेखक ने इस फिल्म के पुलिस ऑफिसर को इतना कानून का रक्षक बताया है कि वो सारा काम लिखित ऑर्डर से ही करता है और जेब में हर वक्त काग़ज़ रखता है। अच्छी स्टाइल थी, राजकुमार जी की तरह पर फिल्म के अंतिम एनकाउन्टर वाले सीन में सब फुस्स हो गया। पूरे ज़िंदा दिल और इमानदार किरदार ने बेइमानी कर दी और तो और शाहरुख ख़ान के प्रति सहानुभूति पैदा हो जाती है जिससे उसके एन्काउन्टर में मार दिए जाने से दर्शक छलावा महसूस करता है। अब क्योंकि ये सच्ची कहानी है और बनाया बड़े पैमाने पर है तो इसकी पटकथा पर और अभिनेताओं के चयन पर ध्यान देना चाहिए था। एक और बात है जो मुख्य है, वो ये कि विषय का चयन ही सही नहीं है। अगर हिरोइज़्म लेकर चलना है तो, वरना इसे नए एक्टर्स या बगैर इमेज वाले एक्टर्स को लेकर बनाई जाती तो ज़्यादा चलती जैसे कि सत्या, गेंग्स ऑफ वासेपुर। वैसे रईस की पटकथा भी सीधी-सपाट चलती है, दर्शक को पता होता है कि आगे क्या होने वाला है। यहाँ वेद प्रकाश शर्मा के उपन्यासों की चपलता, चतुराई और चालाकी की ज़रूरत थी या फिर सलीम-जावेद जैसी पटकथा जहाँ कभी-कभी कहानी में नयापन ना होकर भी पटकथा व संवाद से खेला जाता है।

एडिटिंग टेबल पर पटकथा

वैसे मैंने फिल्म जगत् में प्रवेश फिल्म संपादन के सहायक के रूप में किया था। तब एक गुजराती फिल्म के संपादन के दौरान कुछ दृश्यों की वजह से भावुकता में रुकावट आ रही थी और कोई भी कही गई बात व भावना बेकार जा रही थी; जबकि स्क्रिप्ट के हिसाब से ही शूट होकर आया था। निर्देशक, सहायक व संपादक सभी परेशान थे और उनको उसे ठीक करने का रास्ता समझ ही नहीं आ रहा था। मैंने भी सोचा, थोड़ा पेपर पर दृश्यों के स्थान को यानी कि पोज़िशनिंग को आगे पीछे किया। ऐसे में दृश्यों के स्थान, समय व चरित्रों के ड्रेसअप में बदलाव से एक रूपता यानी कि कन्टिन्यूटी ब्रेक होती है। लाल ड्रेस पहन कर निकले बाहर और बाहर अगर सफेद पहन कर दिखाया, या बँधे बालों से निकली लड़की के बाल आगे खुले हैं तो ये कन्टिन्यूटी ज़र्क आएगा, क्योंकि अन्दर के दृश्य अलग दिन लिए गए होंगे और बाहर के दृश्य अलग दिन शूट किए गए होंगे। इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर, मैंने कहानी की गति व भावनाओं की आवश्यकतानुसार करीब 10 दृश्यों को जोड़ने का एक नया क्रम बनाया। दृश्यों के क्रम को रीएडिट किया और सभी को फिल्म चलाकर दिखाया सभी प्रसन्न हो गए और इमोशन्स

आ गए जो पहले इधर-उधर हो गए थे।

तो दोस्तों इस तरह एडिटिंग टेबल पर फिल्म के उतने हिस्से की पटकथा बनी। अक्सर हमें एडिटिंग के दौरान इस प्रकार दृश्यों को आगे पीछे करके या शॉट्स (दृश्य के एक टुकड़े को शॉट कहते हैं, जब कैमेरा स्टार्ट और कट होता है उतना हिस्सा) को आगे पीछे करके उपयुक्त भावना को सही तरीके से व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। ये ऐसा भी है जैसा कि पत्रिका के संपादक स्थानाभाव व लेखन के टूटते प्रवाह को सही व प्रभावी करने के लिए पेराग्राफ्स को आगे पीछे करते हैं या काट-छाँट करते हैं।

एक और फिल्म का उदाहरण दूँगा वो है हालिया रिलीज जॉली एल.एल.बी.-2 अच्छी फिल्म है। और पटकथा व कहानी भी अच्छी है। हर इन्सान में एक अदृश्य शक्ति होती है या यूँ कहें टेलेन्ट होता है, जिसका पता उसे भी नहीं होता, जब तक उसे जाग्रत नहीं किया जाता या स्वत: उसे हालात आने पर पता चलता है। ये फिल्म ऐसे ही एक बड़े व मशहूर एडवोकेट के यहाँ नौकर की तरह काम करने वाले एक वकील के हीरोइज़्म की कहानी पर है। जैसे हनुमान जी को जाम्बवन्त जी ने उनकी ताकत का एहसास दिलाया था। यहाँ जौली वकील चालाकी से 2 लाख रुपये उस गर्भवती महिला से अपने बॉस के नाम पर यह कहकर ले लेता है कि वो उसके पति के झूठे एनकाउन्टर में मार दिए जाने का केस लड़ेंगे। एक दिन उस औरत को सचाई पता चलती है कि उस एडवोकेट ने ऐसा कहा ही नहीं था, कि वो उसका केस लड़ेंगे, और वो जॉली की पोल सबके सामने खोल कर उसे कोसने लगती है। जॉली अपने परिवार व मोहल्ले वालों के सामने काटो तो खून नहीं की तरह पछतावा करता है। बड़े स्टार की इमेज के हिसाब से इतनी इन्सल्ट, पछतावे के लिए काफी थी, पर पटकथा में एक दृश्य उस औरत के गर्भावस्था की हालत में छत से गिरकर आत्म हत्या करने का भी रखा गया है जो फिल्म में भी है। जिसको न रख कर क्रूरता की अतिरंजना से बचा जा सकता था। इसके बाद जॉली का ज़मीर जागता है, अगर वो गर्भवती मुस्लिम महिला ज़िंदा होती और जॉली द्वारा उसके केस को पूरे सिस्टम से भिड़कर जीतते हुए देखती, तो दर्शकों को

कितनी संतुष्टि होती और शायद, वो होने वाली सन्तान अभिमन्यू की तरह भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में घुसना ही नहीं अपितु निकलना भी सीख जाती पर खैर, इस फिल्म की चुस्त व सटीक पटकथा और संवाद थियेट्रिकल होने के बजाय तहज़ीब वाली वार्तालाप की शैली में असरकारक हैं। इसकी लेखन शैली में मुख्य विषय के अन्दर ही कई शिक्षाप्रद इशारे हैं तो ज्यूडिसरी पर लोगों का विश्वास है, इसे बड़े ही प्रभावी तरीके से पिरोया गया है। सौरभ शुक्ला ने जज के लिखे गए किरदार को पार्ट 1 में भी ग़ज़ब का निभाया था और इसमें भी इतना वास्तविक, और नया, वाह कमाल है!!! आख़िर जज भी इन्सान है, सीनियर एडवोकेट की इज़्ज़त भी करता है तो निष्पक्ष सब की बात सुनता भी है, वो अपने मातहत कोर्ट के गार्ड के नाम के साथ जी लगाकर भी पुकारता है। नाचता भी है बेटी की शादी में तो वो कोर्ट को चौकन्ना भी कर देता है कि उसकी हरकतों से उसे बेवकूफ भी ना समझा जाए। ये सब कुछ लेखन, निर्देशन व अभिनय जब एकदम एक हो जाता है तब ही आता है। लेखन में ये सब कुछ बड़ी बारीकी से लिखा जाता है या लिखा जाना चाहिए। वैसे ही जहाँ जॉली अपनी पत्नी के लिए पैग बनाता है तो पत्नी जॉली पर हुई फायरिंग के बाद उसे रिवॉल्वर लाकर भी दे देती है। इस स्क्रिप्ट में गिमिक्स का इस्तेमाल भी खूब अच्छी तरह से किया है। कोर्ट की कार्यवाही नहीं होने देने व अगली तारीख देने के लिए करप्ट पुलिस ऑफिसर के नामी वकील अन्नू कपूर द्वारा कोर्ट में ही धरने पर बैठ जाना, साथ ही जज का भी उसके साथ रात के बारह बजे तक बैठ कर अगली तारीख हो जाने पर कार्यवाही वापस शुरू कर देना, कोर्ट में मुस्लिम आतंकवादी का पंडित के रूप में आकर अक्षयकुमार (जॉली) से शास्त्रार्थ करते-करते या अल्लाह, यहाँ तक भी होता है, कह देना जिससे वो पकड़ा जाता है, कि मैं वही मुस्लिम आतंकवादी हूँ जिसके बदले उस गर्भवती औरत के पति को झूठे एन्काउन्टर में मार दिया था। जॉली के पूर्व बॉस व नामी एडवोकेट द्वारा बार एसोसिएशन से उसे 4 दिन की मोहलत दे देना पटकथा का मेजिकल मोमेन्ट है। इस तरह इस फिल्म को देखने के बाद विश्लेषण करने बैठें तो इसी निष्कर्ष पर आया जाता है कि मँजी हुई स्क्रिप्ट पर मँजा हुआ निर्देशन है, और तभी बाकी सब भी अच्छा हो जाता है।

जॉली एल.एल.बी.-2 देख कर लगा कि कहानी, पटकथा, संवाद और निर्देशन पर बहुत ही बारीकी से कार्य किया गया है और इसका पूरा श्रेय सुभाष कपूर को जाता है।

अब से इस अंक से मैं आपको मेरी फिल्मों के मेरे अपने संस्मरण सुनाऊँगा, मतलब कहूँगा और हर एंकर की तरह, उद्घोषक की माँग की तरह तालियाँ तो नहीं पर प्रतिक्रियाएँ ज़रूर चाहूँगा-पाठकों से। संस्मरण-फिल्म थी बुलंदी, मैं था नया-नया थोड़ी सी बेवफाई और बुलन्दी में चार महीनों का ही फर्क था और मेरी बतौर सहायक निर्देशक दोनों शुरूआती फिल्में थी। एडिटिंग रूम से सीधा शूटिंग फील्ड पर, जो अब तक नहीं देखा था, उनके साथ काम करना। पूरा नया माहौल, लाइट, कैमरा, मेक-अप, कॉस्ट्यूम, सेट कन्टिन्युटी-जो जहाँ होता है यथावत् ही होना चाहिए, जब तक हटाने की कोई क्रिया कैमरे में शूट नहीं की गई हो-जैसे कि शर्ट की बाहें सिंगल फोल्ड है या डबल? टेबल पर केलों का गुच्छा उल्टा रखा है या सीधा आदि। भिड़ते ही मुझे इसकी और कॉस्ट्यूम कन्टिन्युटी की ज़िम्मेदारी दी गई, क्योंकि मैं एडिटिंग डिपार्टमेन्ट से था, जिन्हें एडिटिंग करते-करते ये सब त्रुटियाँ पता होती हैं, पर रचनाकार होने और टिप्पणीकार/आलोचक होने में बहुत बड़ा फर्क होता है अब अथाह सागर में छलाँग तो लगा दी सो तैरना तो पड़ेगा, बड़ा कहता था मैं जब एडिटिंग से जी भर गया था वॉट नेक्स्ट?

हुआ यूँ कि राजकुमार साहब फिल्म बुलंदी में प्रोफ़ेसर थे क्लास ले रहे थे। डायरेक्टर इस्माईल श्रॉफ जी बड़े व्यवस्थित और डिसीप्लींड डायरेक्टर हैं। हर सीन के

सारे थोट्स लिखवा देते थे। मतलब कि फलाँ संवाद, फलाँ एंगल से लिया जायगा। ये लाँग शॉट, ये मिड शॅट और ये क्लोज अप (आगे निर्देशन के बारे में जब बताऊँगा, तब विस्तृत बात होगी) एक लाँग शॉट जिसमें स्टूडेन्ट्स की बेक थी और राजकुमार साहब का फुल फिगर और फ्रन्ट था। कैमरा सारे स्टूडेन्ट्स के पीछे रखा था। संवाद चल रहे थे, राज साहब मेनेरिज़्म और बाडी लेंग्वेज़ की स्टाइल में माहिर थे। उन्होंने अपनी कोट की जेब से रूमाल निकाला और होंठों को साफ करके कोट की ऊपर की जेब में इस प्रकार रखा कि उसका एक कोना जेब से बाहर रहे। इस शॉट के शायद तीन टेक हुए थे हर बार वे थोड़े अलग-अलग शब्दों पर रूमाल निकालना व रखना कर रहे थे। इस शॉट के बाद अलग एंगल से आगे का शॉट लेना था, तब मैं रूमाल पहले से ही ऊपर की जेब में है कि नहीं नेक्स्ट शॉट शुरू होने के पहले जाँच लेता। पर क्योंकि पहले वाला शॉट जो कि लम्बा था इसलिए इस्माइल जी व राज साहब ने शायद मिलकर इम्प्रोवाइज़ किया कि उस लम्बे शॉट के बीच में एक क्लोजअप लगाया जाए। उन्होंने मुझे बुलाया और राज साहब ने पूछा कि पण्ड्या मैंने पिछले तीनों टेक में कब-कब रूमाल का मूवमेन्ट किया, बताओ। पाशा क्लोज़अप लेना चाहते हैं (वो प्यार व इज़्ज़त से इस्माइल जी को पाशा

बुलाते थे)। इससे पहले वे मुख्य सहायक को पूछ चुके थे, जो संवाद और सीन के शॉट्स का हिसाब किताब रखते हैं और साथ ही ऐसी बारीक बातें भी, पर वे नहीं बता पाए क्योंकि बीच में क्लोज़अप लेना लिस्ट में था ही नहीं। मैं तीसरा सहायक था पर हमेशा सीन की कापी भी रखता था, जब कि सिर्फ मुख्य सहायक ही रखता है। इस बात पर विवाद भी होता था और सारे शॉट्स और टेक की बारीकियाँ अपने ही द्वारा आविष्कृत सूक्ष्म भाषा में, जल्दी-जल्दी रनिंग कामेन्ट्री की तरह संवादों के बीच की पंक्तियों पर लिख देता जैसे कि उदाहरण के लिए संवाद है- बेंकिंग सिस्टम से समाज की व्यवस्था में सुधार आया है, बचत के रूप में, वहीं देश की योजनाओं पर भी खासा-अच्छा असर हुआ है। अब व्यवस्था से रूमाल निकाला और आया है के बाद मुँह पोंछा और योजनाओं पर जेब में रखा, तो मैं उन शब्दों के नीचे की छोटी-सी जगह पर लिखता Takes Out KH (Hand Karchies) Mouth-Poket ये शॉर्ट लिपी मेरी अपनी थी।

तो मैंने अपने पेपर से देख कर राज साहब को बता दिया तीनों बार जो अलग-अलग क्रिया की थी। उन्होंने उसे वापस किया उसी संवाद के साथ और उन्हें ऐसा करने से याद आ गया कि ऐसा ही किया था पर फिर भी राज साहब ने पूछा पण्ड्या आर यू श्योर, देख लो एडिटिंग में अगर लाँग शॉट के एक्शन से क्लोजअप का एक्शन (क्रिया) मेल नहीं खाएगा, तो क्लोजअप नहीं लग पाएगा और फिर पाशा तुम्हें नहीं छोड़ेंगे। वे मुझे सावधान करने के बहाने डरा भी रहे थे और मुझे जाँच भी रहे थे, मैं भी अडिग था कहा राज साहब ऐसा ही किया था आपने मैं श्योर हूँ। फ़ोटोजनिक मेमोरी है पण्ड्या की उन्होंने इस्माईलजी से कहा। क्लोजअप वैसे ही लिया गया। सब मुझे डराने लगे राज कुमार साहब का एक दब-दबा था और मैं नया एडिटिंग में। वो क्लोज-अप सौ प्रतिशत सही मैच हुआ, राज साहब ने देखकर शाबाशी दी वो शॉट फिल्म में है और किस्सा आपने पढ़ लिया।

क्रमशः

❒❒❒

2603, ऑबराय स्पलेन्डर
मजास डेपो के सामने, जे.वी.एल.आर.
अंधेरी(पूर्व), मुम्बई 400060
फ़ोन 02228387112

शिवना साहित्यिकी सदस्यता प्रपत्र

यदि आप शिवना साहित्यिकी की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा शिवना साहित्यिकी (SHIVNA SAHITYIKI) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को शिवना साहित्यिकी के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है :

Name of Account : **Shivna Sahityiki**, Account Number : **30010200000313**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम : — — — — — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :** — — — — — — — — — — — — — — — — —
— — — — — — — — — — — — — — —**सदस्यता शुल्क :**— — — — — — — —**चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**— — — — — — — — — —
ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :— — — — — — —**दिनांक :** — — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के

पुस्तक-आलोचना

यादों के गलियारे से रचनात्मक यात्राओं तक

कैलाश मण्डलेकर

पुस्तक: यादों के गलियारे से (संस्मरण); लेखक: सूर्यकांत नागर
प्रकाशक: शिवना प्रकाशन

यदि आप सूर्यकांत नागर जी को जानते हैं तो जैसे ही उन्हें याद करेंगे आँखों के सामने एक ऐसी शख्सियत नुमाया होगी जो सदाशयता से भरी हुई है और जिसकी हँसी में कृत्रिमता का नामो निशान भी नही मिलेगा। मेरी उम्र के साहित्यिक मित्रों में उन्हें लेकर एक अखंडित आदरभाव है लेकिन साथ ही एक मजाक भी चलता है 'गुरु जवानी में खूब गुल खिलाए होंगे'। इस वाक्य का निहितार्थ यह है कि नागर जी अब तक जस के तस बने हुए हैं, उन्होंने उम्र को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया चेहरे पर तो अब भी वही मासूमियत है अलबत्ता बातचीत के दौरान जब वे कतिपय पुरानी यादें शेयर करते हैं तो पता चलता है कि इस शख्स के पास अनुभवों का एक असमाप्त जखीरा हैं जिसमें अनेक नामचीन लोग शामिल हैं और शामिल ही नहीं नागर जी से उनकी अच्छी खासी यारी दोस्ती भी है। दरअसल वे ऐसे अनेक लोगों की बैठकी में शिरकत कर चुके हैं, जिन्हें हमारी पीढ़ी के लोगों ने या तो बहुत दूर से देखा या फिर देखा ही नही। लेकिन उनकी विनम्रता देखिए कि वे अपने से उम्र में आत्यन्तिक कनिष्ठ और अनुजवत यशवंत व्यास पर बात करते हैं तो कह जाते हैं कि मैंने उनसे पत्रकारिता के क्षेत्र में बहुत कुछ सीखा।

आरम्भ से मै सूर्यकांत नागर जी को एक व्यंग्यकार के तौर पर जानता था, मुझे ध्यान आता है मैंने उनका व्यंग्य संग्रह 'गुदड़ीके लाल' आज से करीब बीस पच्चीस बरस पहले पढ़ा था, उन दिनों मेरी उम्र के अनेक लोग व्यंग्य लिखना सीख रहे थे सो ज़ाहिर है कि नागर जी के व्यंग्य भी हम लोगों के लिए प्रेरणास्पद रहे हैं। उनके व्यंग्य ज़्यादातर गैरराजनीतिक विषयों पर केन्द्रित हुआ करते थे तथा सामाजिक, साहित्यिक और नौकरशाही से उपजी विसंगतियों पर उन्होंने बहुतायत से व्यंग्य लेखन किया। बाद के वर्षों में जब वे बतौर फीचर संपादक नई दुनिया में आए तो उन्होंने मेरी रचनाओं को बहुत स्नेह से छापा। बल्कि उनके संपादकीय संस्पर्श का दखल भी मेरी उस दौर की रचनाओं में झलकता है। यह अलहदा बात है कि व्यंग्य के अलावा युद्ध जारी रहे और यह जग काली कूकरी जैसे उपन्यास गलत होते संदर्भ सूखते पोखर की मछली और दरिन्दे जैसे कहानी संग्रह भी उनके नाम दर्ज हैं तथा एक सुपरिचित कथाकार के रूप में भी वे समादृत हैं। इन दिनों उन्होंने लघुकथाओं का भी विपुल लेखन किया है और एक प्रखर लघुकथाकार के रूप में उन्हें राष्ट्रव्यापी पहचान प्राप्त है। 'यादों के गलियारे' नामक प्रस्तुत कृति नागर जी के उपरोक्त बहुआयामी व्यक्तित्व की गवाही देती है। इधर संस्मरण काफी तादाद में और पर्याप्त तेजस्विता के साथ लिखे जा रहे हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ विजयबहादुर सिंह, ज्ञानरंजन, कांतिकुमार, काशीनाथ जी, रवीन्द्र कालिया, उदयप्रकाश मंगलेश डबराल, ओमा शर्मा जैसे अनेक नामचीन साहित्यकारों की संस्मरण कृतियों ने इस विधा को न केवल लोकप्रियता प्रदान की बल्कि संस्मरण लेखन के लिए एक नई भाषा भी ईजाद की। इन संस्मरणों में सिर्फ साहित्यिक परिघटनाओं के उबाऊ ब्योरे ही नहीं होते वरन् सघन पारिवारिकता मैत्री और आपसदारी के विरल वृत्तान्त भी दिखाई देते हैं। सूर्यकांत नागर की संस्मरण कृति उपरोक्त अर्थों में बेहद प्रासंगिक और अनुकरणीय है जबकि यह उनके संस्मरण लेखन का दूसरा भाग है। इसके पहले जैसा कि उन्होंने अपने आत्मकथ्य में कहा सरे राह चलते नामक एक अन्य कृति भी आ चुकी है जो संस्मरण पर ही केन्द्रित है। नागर जी के संस्मरण पढ़ते हुए जो पहला विचार मन में आता है वह यह कि संस्मरण मूलत: मन के एकांत की सार्वजनीनता है जो संस्मृत की निजता को अपार स्नेह और ऊष्मा से छूती है। कभी कभी यह छुअन कंटीली और घातक भी हो सकती है पर ऐसे संस्मरण एक किस्म की अराजकता और विषाद को जन्म देते हैं। शुक्र है कि सूर्यकांत नागर के संस्मरण उस किस्म की अराजकता से बचे हुए हैं। उनमें प्रतिमा का सिंदूर खुरचने की दारुण दुरभिसंधियाँ नही हैं। बल्कि दूसरों की छवियों और छायाओं के प्रेमल अभिनंदन हैं। सूर्यकांत नागर के संस्मरण अपनी कमज़ोरियों का साफ़ तौर से खुलासा करते हैं लेकिन सामने वाले के स्वागत में वन्दनवार सजाते हैं। जो लोग यादों के गलियारे में शामिल हैं वे उनकी इस निष्कलुष उदारता के प्रति निश्चय ही कृतज्ञता ज्ञापित करेंगे जो इस मेजबानी से वंचित हैं वे कामना करें कि भगवान् उन्हें संसमरण का तीसरा खंड भी लिखने की प्रेरणा प्रदान करे।

संस्मरण लेखन के संदर्भ में सूर्यकांत नागर सच या बोल्डनेस लेखन के पक्षधर नहीं हैं। वे पीने पिलाने और यौन संबंधों के ब्योरों को सही नहीं मानते, आत्मकथाओं में सच को चालाकी के साथ छुपाने पर उन्हें चिढ़ है। इस संदर्भ में वे हरिवंश राय बच्चन जैसे बड़े लेखक को भी कटघरे में खड़ा करते हैं। अपने आत्मालाप में वे अपने निजी दैनंदिन का का साहस के साथ खुलासा करते हैं। उन्हें एकांत पसंद है। तथा वे ईमानदारी, सद्भावना और प्रेम जैसे

मूल्यों के पक्षधर हैं।चुनौती पूर्ण कामों को करने में उनकी उम्र अब भी आड़े नही आती। आत्मकथ्य में वे अपने अव्यक्त प्रेम प्रसंगों का भी ज़िक्र करते हैं। उम्र और एकाकीपन से उपजे मनोविकारों को साझा करने में उन्हें संकोच नही होता। यह उनकी पारदर्शिता का ही प्रमाण है कि अपनी निजी कमजोरियों को उजागर करते हुए उन्हें किंचित भी हीनताबोध नही होता। वे अपने अवसाद का भी जिक्र करते हैं जो लेखकों की आम बीमारी है। दरअसल हिन्दी में लेखक की सामजिक स्वीकृति एक एक बेहद दुर्लभ चीज़ है। भारतीय समाज का यह दारुण यथार्थ है कि वह लेखक को उतना सम्मान हरगिज नही देता जो उसका यथेष्ट है। इन स्थितियों में किसी भी रचनाकार को नैराश्य घेर लेता हैक्योंकि लेखक अपने रचना संसार में जिस मूल्य आधारित समाज के निर्माण के स्वप्न संजोता है व्यवहार में वैसा समाज उसे कहीं नही मिलता। बल्कि इतिहास गवाह है कि समाज लेखकों के लिए प्राय: क्रूर ही साबित हुआ है। नागर जी की कठिनाइयों के पीछे गहराई से देखा जाए तो वह सामजिक परिवेश ही है जिसके बीच वे रहते हैं या कोई भी लेखक रहता है। इस आत्मालाप के जरिये वे अपने गिरेबान में भी झाँकते हैं लेकिन दूसरों को भी उनके भीतर झाँकने को उकसाते हैं। नई दुनिया के बहाने लिखते हुए उन्होंने आठवें और नवें दशक की पत्रकारिता को सिलसिलेवार और गहराई से जाँचने का प्रयास किया है। इस आलेख में वे नई दुनिया से जुड़ी अनेक नामचीन हस्तियों को याद करते हैं। एक बड़े संस्थान के नेपथ्य में प्रबंधन आदि को लेकर जो विसंगतियाँ पनपती हैं उनकी तरफ भी उन्होंने इशारे किए हैं। व्यक्तिगत क्षुद्रताएँ और लाभ लोभ के गणित निजी संबंधों को तो क्षति पहुँचाते ही हैं सांस्थानिक अनुशासन को भी विकृत कर डालते हैं। अपने संस्मरण में पत्रकारिता के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ राहुल बारपुते को वे बहुत आदर और उदारता से याद करते हैं। साथ ही नईदुनिया की टूटन का दर्द भी उनके आलेख में झाँकता है। यह संस्मरण पत्रकारिता के वर्तमान स्वरूप को भी रेखांकित करता है। दरअसल इस दौर में प्रिंट मीडिया बाज़ार की जिस आत्मघाती

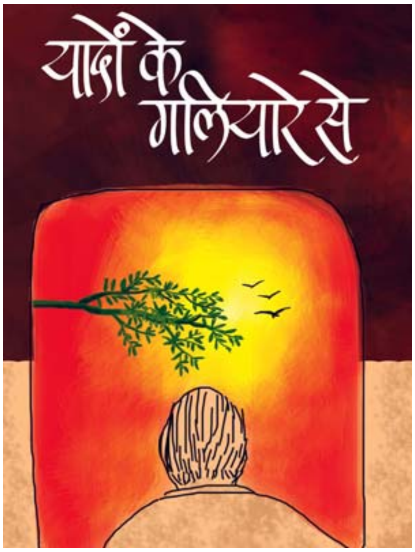

प्रतिस्पर्धा से जूझ रहा है नई दुनिया उसी का शिकार हुआ। वरना क्या कारण है कि इतने निष्णात लोगों की उपस्थिति के बावजूद एक आदमकद अखबार हार गया। नई दुनिया के पास पत्रकारिता के स्वस्थ व उच्चतम मूल्य थे जो बाजार के बीमार इरादों के आगे परास्त हुए। इन दिनों इस द्वंद्व के शिकार वे सभी अखबार हैं जो मूल्य आधारित पत्रकारिता के लिए प्रतिबद्ध हैं।

पत्रकारिता को लेकर इस कृति में लगभग पाँच आलेख हैं। पत्रकारिता का पाठ, नई दुनिया के बहाने, पत्रकारिता आज, साहित्यिक पत्रकारिता भाषा के विविध आयाम, तथा संकट संपादक के। उपरोक्त सभी आलेखों में सूर्यकांत नागर ने अपने विगत के अनुभवों को साझा किया है। साहित्यिक पत्रकारिता वाले लेख में वे भाषा की जटिलता वाले मुद्दों तथा अंग्रेजी शब्दों की प्रयोग बहुलता को प्रखरता से रेखांकित करते हुए लोकोक्तियों के विलुप्त होने और लोक भाषाओँ के संकट की तरफ इशारा करते हैं। दुर्भाग्य है कि लोक संस्कृति अब सरकारी आयोजनों तक सिमटती जा रही है, जहाँ लोक संवेदना सिरे से नदारद है। सम्पादक के संकट के तहत उन्होंने नई दुनिया मनस्वी और समावर्तन जैसे पत्रों का उल्लेख किया है। नई दुनिया के फीचर सम्पादक के बतौर नागर जी की प्रतिष्ठा तथा कार्य शैली का अनुभव इन पंक्तियों के लेखक को भी रहा है। नई दुनिया में उन दिनों नागर जी ही एक ऐसे संपादक थे जो बहुत अप्रोचेबल माने जाते थे। जिनसे सीधे बात करने में कोई अड़चन नहीं होती थी। उस दौर के अनेक व्यंग्य और फीचर लेखक नागर जी से सीधे जुड़े थे। मनस्वी को लेकर उनके अनुभव विषाद पूर्ण रहे जबकि समावर्तन से वे आज भी जुड़े हैं। देश के सभी प्रतिष्ठित व्यंग्यकारों को उन्होंने ने समावर्तन के वक्रोक्ति में प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। मुझे याद आता है मेरा भी कोई व्यंग्य उन्होंने वक्रोक्ति में सम्मान के साथ प्रकाशित किया था। साहित्यिक पत्रकारिता वाले लेख में रामानंद चटर्जी वाला संस्मरण न केवल दिलचस्प है वर संपादकों की नैतिकता और दृढ़ता को भी स्थाप्पित करता है। पत्रकारिता अपने मिशन में वस्तुत: सरकारों की स्वैच्छाचारिता को नियंत्रित करती है। जबकि वह इन दिनों बाजार की प्रतिस्पर्धा से जूझ रही है। इस क्षेत्र में बहु राष्ट्रीय कम्पनियों और पूँजी से जुड़े घरानों के दखल ने अख़बारों की प्रतिष्ठा को ठेस पंहुचाई है। सूर्यकांत नागर उपरोक्त मुद्दों को तेजस्विता और नीर्भीकता से सामने लाते हैं और पत्रकारिता में मूल्यों के संरक्षण की दिशा में सोचने की पहल करते हैं।

यादों के गलियारे में सुप्रसिद्ध साहित्यकार कथाकार अमृतलाल नागर पर उल्लेखनीय संस्मरण है। इसमें उनके मानवीय और करुणावान पक्ष को सामने रखा गया है। वे निरे बौद्धिक ही नही एक गहरे इंसान भी थे। अपने नौकर संचित सिंह के प्रति वे जिस मानवीय ऊष्मा को प्रदर्शित करते हैं यह नागर जी के बड़े रचनाकार और सर्जक होने का प्रतीक है। नरेश मेहता को भी गहरी आत्मीयता से याद किया गया है।। सूर्यकांत नागर लिखते हैं 'नरेश जी के कवि रूप से प्रभावित हूँ प्रकृति, मनुष्य और काल के माध्यम से उन्होंने उन्होंने मनुष्य जीवन के यथार्थ तथा इतिहास के अंतर संबंधों को रेखांकित किया है'। जबकि बाबा नागार्जुन का स्मरण करते हुए सूर्यकांत नागर उनके फक्कड़पन और विलक्षण व्यक्तित्व की गरिमा को उल्लेखनीय ढंग से रेखांकित करते हैं। नागार्जुन के रचना संसार को जानने के लिए डॉ. विजयबहादुर सिंह की कृतियाँ जैसे नागार्जुन संवाद, नागार्जुन का रचना संसार आदि बेहद उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों के मार्फत बाबा को गहराई से समझा जा सकता है। इस आलेख से यह भी जानकारी मिलती है कि बाबा ने मैथिली

कवि विद्यापति की प्रेम और श्रृंगार रस की कविताओं का बहुत हृदयग्राही अनुवाद किया है। इस संस्मरण में नागर जी बाबा के कवि व्यक्तित्व के विरल पक्षों को सामने लाते हैं। संस्मरणकार ने अपने एक महत्त्वपूर्ण आलेख में कथाकार कमलेश्वर को ज़िंदादिल और प्रतिबद्ध रचनाकार माना हैं। कमलेश्वर ने विश्वविद्यालय के कुलपति पद को स्वीकार नहीं किया जबकि दूरदर्शन के निदेशक के रूप में उनकी काफी प्रतिष्ठा रही है। इस आलेख में बीयर प्रसंग बहुत रंजक है और सोचने को मजबूर करता है कि वे भी क्या दिन रहे होंगे कि जब बीयर जैसी चीज़ को पीने के लिए इस कदर भय और संकोच हुआ करता था। जबकि इन दिनों छोटे शहरों की महिलाएँ भी निर्भीकता से बीयर पी लेती हैं। नईम साहब की नखले तमन्ना का ज़िक्र करते हुए सूर्यकांत नागर उन्हें बहुत आत्मीयता पूर्वक स्मरण करते हैं। नईम साहब के संकोच के चलते उनके सम्पर्क का दायरा भले ही सीमित रहा हो पर वे बहुत प्यारे इंसान थे। इस कृति से यह भी खुलासा हुआ कि सूर्यकान्त नागर और रोमेश जोशी साढ़ू भाई हैं। अज्ञेय जी को अन्वेषी कवि मानते हुए सूर्यकांत नागर कहते हैं 'अज्ञेय की काव्य दृष्टि जीव दर्शन, आलोचना कर्म आदि को ठीक से समझने के लिए उनकी डायरियाँ सर्वाधिक सहायक हैं ये डायरियाँ भवंती, अंतरा, शाश्वती और शेषा हैं'। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि अज्ञेय पर पाश्चात्य कवियों के प्रभाव को अज्ञेय जी ने स्वयं स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि सर्वथा मौलिक विचार कोई बिरला ही लाता है यों अज्ञेय जी की कविताओं पर बहुत काम हुआ है लेकिन उनके गद्य और पत्रकारिता पर भी लिखा जाना चाहिए। सूर्यकांत नागर जी की यादों के गलियारे में अनेक लेखक और संस्कृति कर्मी हैं। रमेश दवे की बहुमुखी प्रतिभा का उल्लेख करते हुए वे उनकी सर्वग्राही भाषा और वैचारिक गद्य को भी रेखांकित करते हैं। जबकि रमेश बक्शी के कवि और कथाकार पर उनकी बहुमूल्य टिप्पणी है। धनंजय वर्मा पर लिखे गए आलेख में उनकी आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि का सूक्ष्म विवेचन किया गया है साथ ही गोविन्द मिश्र के वैचारिक लेखन का आकलन करते हुए उनकी सदाशयता पर भी लिखा गया है। प्रभात भट्टाचार्य के बारे में कहते हैं कि 'बाबा एक बेहतर इंसान हैं और उनके मित्रों परिचितों का दायरा बहुत व्यापक है'। विष्णु नागर पर लिखे संस्मरण में उनकी पारदर्शी और बेलाग छवि को देखा गया है। वहीं विलास गुप्ते को संस्मरण कार ने पारदर्शी और छल छद्म से रहित व्यक्ति माना है। इस कृति में प्रेम जनमेजय की हिन्दी व्यंग्य के प्रति अटूट आस्था की भी सराहना है। जबकि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अन्वेषी व्यक्तित्व और रमेश बत्तरा की व्यवहारिकता की भी प्रशंसा की गई है। सूर्यकांत नागर, राजी सेठ, सूर्यबाला और सुधा अरोड़ा जैसी प्रथम पंक्ति की कथाकारों को बहुत स्नेह से याद करते हैं और उनके कथा लेखन में वर्तमान सामाजिक संदर्भों की गहरी पड़ताल भी करते हैं। इस संस्मरण कृति में प्रख्यात व्यंग्यकार शरद जोशी पर आकलन परक निबंध है साथ ही इंदौर के सुपरिचित व्यंग्यकार डॉ जवाहर चौधरी की व्यंग्य दृष्टि का भी खुलासा किया गया है।यादों के गलियारे में प्रभु जोशी के आकर्षक व्यक्तित्व और गहन बौद्धिकता पर नागर जी का महत्त्वपूर्ण आलेख है। साथ ही सतीश मेहता के रंगमंच और संतोष जडिया की कला विषयक दृष्टि की भी खोज खबर ली गई है। सरोजकुमार के स्वाभिमानी व्यक्तित्व और श्याम व्यास की प्रतिभा को भी यहाँ गहराई से रेखांकित किया गया है। चरणसिंह अमी, सुरेश शर्मा, दामोदर खडसे, शरद नागर और बाबूलाल सेन जैसे अनेक साहित्यकार यादों के गलियारे में अपने कृतित्व और व्यक्तिव की साथ विद्यमान हैं।

ये संस्मरण हमें अपने इर्द गिर्द अवस्थित सर्जना के एक भरे पूरे और व्यापक संसार से रू-ब-रू कराते हैं। नागर जी ने इन संस्मरणों में उस भाषा विन्यास का इस्तेमाल किया है जो मिठास और आपसदारी से लबरेज है। इस कृति का भरपूर स्वागत किया जाना चाहिए।

❑❑❑

38 जसवाडी रोड बैंक ऑफ़ इण्डिया के पीछे खंडवा

मोबाइल 9425085085

ईमेल kailash.mandlekar@gmail.com

तरही मुशायरा

इस बार ईद के अवसर पर ''बहरे हज़ज मुसमन मक़फ़ूफ महज़ूफ'' पर आयोजित किए गए मुशायरे का तरही मिसरा था – कहती है ये ख़ुशियों की सहर, ईद मुबारक

दिगंबर नासवा

रमजान में लौटेंगे वो घर, ईद मुबारक
सरहद से अभी आई खबर, ईद मुबारक
मुखड़ा है मेरे चाँद का, है चाँद की आमद
अब जो भी हो सबको हो मगर, ईद मुबरक
देखेंगे तो वो इश्क ही महसूस करेंगे
वो देख के बोलें तो इधर, ईद मुबारक
साजिश ने हवाओं की जो पर्दा है उड़ाया
आया है मुझे चाँद नज़र, ईद मुबारक
इंसान ही इंसान का दुश्मन जो बनेगा
तब किसको कहेगा ये शहर, ईद मुबारक
लो बीत गए दर्द की परछाई के साए
कहती है ये खुशियों की सहर, ईद मुबारक

नुसरत मेहदी

रक़्साँ हैं दुआओं के शजर ईद मुबारक
हैं नग़मासरा बर्ग ओ समर, ईद मुबारक
हर सम्त फ़ज़ाओं में उड़ाती हुई ख़ुशबू
कहती है ये खुशियों की सहर ईद मुबारक
लो फिर से महकने लगीं उम्मीद की कलियाँ
खुलने लगे इमकान के दर, ईद मुबारक
कुछ लोग हैं लेकिन पसे दीवारे अना भी
जा कह दे सबा जाके उधर ईद मुबारक
ये तय है कि हम ईद मनाने के नहीं हैं
मिलकर न कहा तुमने अगर ईद मुबारक
जो प्यास के दरिया में भी सेराब थे 'नुसरत'
दामन में हैं अब उनके गुहर ईद मुबारक

महेश चन्द्र गुप्त 'ख़लिश'

कहती है ये ख़ुशियों की सहर, ईद मुबारक
है झूम उठा सारा शहर, ईद मुबारक
दो दोस्तियों का सदा पैग़ाम सभी को
मन में न रहे आज ज़हर, ईद मुबारक
दिल खोल के बाँटें सिवैयाँ, शौक अजब है
उल्फ़त की उठी दिल में लहर, ईद मुबारक
आया है हसीं वक़्त मेरे दोस्त ज़रा सुन
कुछ देर अभी और ठहर, ईद मुबारक
रंगीन नज़ारों में ख़लिश रब न भुलाना
कर लो जो इबादत दो पहर, ईद मुबारक

❑❑❑

समीक्षा

वो सफ़र था कि मुकाम था

वंदना गुप्ता

पुस्तकः वो सफ़र था कि मुकाम था (संस्मरण); लेखकः मैत्रेयी पुष्पा
प्रकाशकः राजकमल प्रकाशन

'वो सफ़र था कि मुकाम था' मैत्रेयी पुष्पा जी द्वारा लिखी एक संस्मरणात्मक पुस्तक तो है ही शायद राजेंद्र यादव जी को दी गई एक श्रद्धांजलि भी है और शायद खुद से भी एक संवाद है, प्रतिवाद है।

मुझे नहीं पता कैसे संबंध थे मैत्रेयी जी और राजेन्द्र जी के और न जानने की उत्सुकता; क्योंकि एक स्त्री होने के नाते जानती हूँ यहाँ तथ्यों को कैसे तोड़ा- मरोड़ा जाता है। मुझे तो पढ़ने की उत्सुकता थी कैसे किसी के जाने के बाद जो शून्य उभरता है उसे लेखन भरता है। इस किताब में शायद उसी शून्य को भरने की लेखिका द्वारा कोशिश की गई है मगर शून्य की जगह कोई नहीं ले सकता। शून्य का कोई विलोम भी नहीं। यानी लेखिका की ज़िंदगी में जो शून्य पसरा है अब उम्र भर नहीं भर सकता। जिस गुरु, पथप्रदर्शक, विचारक, दोस्त के साथ ज़िंदगी के 20-22 साल गुज़रे हों तमाम सहमतियों और असहमतियों के बाद भी, क्या उसे किसी भी वस्तु, मनुष्य या अनर्गल संवाद से विस्थापित किया जा सकता है। ये रिश्ता क्या कहलाता है! ये जानने की उत्सुकता तो सभी को रही लेकिन ये रिश्ता कैसे निभाया जाता है शायद ही कोई समझ पाया हो। जहाँ भी स्त्री और पुरुष हों वहाँ उनके कैसे स्वच्छ संबंध हो सकते हैं ? ये हमारी मानसिकता में घोंट-घोंट का ठूँसा गया है तो उससे अधिक हम सोच भी नहीं सकते जबकि रिश्ता कोई हो वो भरोसे की नींव पर ही टिक सकता है और शायद दोनों ने ही उस भरोसे को कायम रखने की कोशिश की तभी इतना लम्बा सफ़र तय कर पाया। हो सकता है राजेंद्र जी की छवि के कारण मैत्रेयी जी को भी वैसा ही माना गया हो; क्योंकि कहते हैं ताड़ी के पेड़ के नीचे बैठकर गंगाजल भी पियो तो भी आपको शराबी ही समझा जाएगा और शायद उसी का शिकार यह संबंध भी रहा।

मैं यह मानती हूँ जो भी लेखक लिख रहा है वो सच लिख रहा है खासतौर से यदि वो संस्मरण हों या आत्मकथा जबकि कहते हैं आत्मकथा में भी थोड़ी लिबर्टी ले ली जाती है लेकिन जब श्रद्धांजलि स्वरूप कुछ लिखा जाए तो वहाँ कैसे किसी अतिश्योक्ति के लिए जगह होगी। वैसे भी मैंने न तो आज तक राजेन्द्र जी को पढ़ा न मैत्रेयी जी को इसलिए निष्पक्ष होकर पढ़ने का अलग ही मज़ा है बिना कुछ जाने। किताब पढ़ो तो लगता है सफ़र में हम साथ ही तो चल रहे हैं उन दोनों के फिर उसे मुकाम कैसे कहें! लेखिका ने अपनी भावनाओं के सागर में डुबकी लगा कैसे चुनिन्दा लम्हों को कैद किया होगा, ये आसान नहीं। खासतौर से तब जब जिसे श्रद्धांजलि आप दे रहे हैं उसके अच्छे और बुरे दोनों पक्षों से आप वाकिफ हो चुके हों। फिर भी उन्होंने अपने साहस का परिचय दिया। राजेंद्र जी सकारात्मक में नकारात्मक छवि और नकारात्मक में सकारात्मक छवि का अद्वितीय उदाहरण थे। लेखिका को उनके जीवन की कुंठा भी पता थी तो उनकी महत्त्वाकांक्षा भी। तभी संभव हो पाया उनके दोनों पक्षों से न्याय करना। राजेन्द्र जी कैसे व्यक्तित्व थे मुझे नहीं पता क्योंकि न कभी मिली, न उन्हें जानती थी, न कभी देखा। जितना जाना, पढ़ा उनके बारे में तो नेट पर किसी पोस्ट में या फिर अब इस किताब में तो मेरे अन्दर की स्त्री की छटी इंद्री यही कहती है कहीं न कहीं अपने पिता द्वारा तिरस्कृत व्यक्तित्व थे वो, जो उपेक्षा का जब शिकार हुए तो उन्होंने उसे भी अपनी सबसे बड़ी ताकत बनाने का फैसला कर लिया। यानी अपनी कमियों को अपनी ताकत बनाया और पिता का कहा एक वाक्य - 'कौन इससे अपनी बेटी ब्याहेगा' ने उन्हें जीने की वजह दे दी। खुद से और ज़माने से लड़ने का विचार भी और इसके लिए मानों उन्होंने यही सोचा हो अब खुद को इतना बड़ा बनाओ कि ये कहावत सही सिद्ध हो जाए - खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर से पहले खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है। इसे ज़िंदगी का मूलमंत्र बना उन्होंने पूरी तैयारी के साथ साहित्य जगत् में कदम रखा तो एक क्या जाने कितने ही नाम उनसे जुड़ते चले गए। मतलब अपनी अपनी गरज से जुड़ने वाले रिश्ते कितने खोखले होते हैं ये सभी जानते हैं और ऐसा ही यहाँ होता रहा और उनकी छवि एक प्ले बॉय जैसी बन गई। एक धधकती आग को वहीं विराम मिला कि देखो आज लाइन लगी है मेरे पास, जैसे अपने पिता को वो एक जवाब देना चाहते हों कि यहाँ इंसान की कमी मायने नहीं रखती बस ज़रूरत है खुद को ऐसा बना लो कि दुनिया चरणों में झुकने लगे। इसका ये मतलब नहीं उन्होंने किसी का ज़बरदस्ती फायदा उठाया जैसा कि लेखिका ने कहा, जो जिस उद्देश्य से आया उसे वो सब मिला। राजेन्द्र जी के अन्दर एक सच्चे प्यार की प्यास का भी लेखिका ने दिग्दर्शन तो कराया वहीं एक सच से भी जैसे पर्दा उठाया

शायद इस बहाने कहना चाहती हों लेखिका कि उनके अन्दर बेशक चाहत तो थी लेकिन सबसे ऊपर था उनका स्वभाव जिसे वो किसी के लिए नहीं बदल सकते थे। मन्नू जी से शादी भी जैसे एक समझौता था दोनों के मध्य जैसा कि लेखिका ने कहा। कोई नहीं जानता किसने किस उद्देश्य से संबंध जोड़ा और फिर अलग हुए; क्योंकि दोनों की अपनी-अपनी अपेक्षाएँ थीं। एक दूसरे से जिस पर दोनों ही शायद खरे न उतरें हों। इस सन्दर्भ में भी लेखिका ने अपना पक्ष साथ-साथ रखा जिससे यदि सिद्ध हुआ वो उनके मध्य नहीं थीं या वो कारण नहीं थीं उनके अलगाव का; क्योंकि जो संबंध ज़रूरतों से बनते हैं वो एक मोड़ पर आकर अलग रास्ता अख्तियार ही कर लेते हैं। फिर वो राजेन्द्र जी ही क्यों न हों; जिन्होंने खुद को और अपने पिता और ज़माने को दिखाना चाहा हो कि अपाहिज होने से ज़िन्दगी नहीं रुका करती। हम इस संबंध पर कुछ नहीं कह सकते कौन कितना सही था और कितना गलत; क्योंकि पति-पत्नी का रिश्ता तो होता ही विश्वास का है और यदि वो टूटा तो वहाँ सिवाय किरचों के कुछ नहीं बचता जो उम्र भर सिर्फ चुभने के लिए होती हैं। लोग कह सकते हैं औरत उनकी कमज़ोरी थी या ये भी कहा जा सकता था वो आगे बढ़ने की सीढ़ी थे, लेकिन जो भी था वो सच हर कोई अपने अन्दर जानता है उसकी क्या पड़ताल की जाए।

यहाँ एक बात और उभर कर आई खासतौर से तब जब लेखिका स्त्री विमर्श के लिए खड़ी होती हैं और औरतों के लिए छिनाल शब्द का प्रयोग किया जाता है तब लेखिका की आँखों से जाने कितने परदे हटते हैं। जिस विश्वास के सहारे उनका रिश्ता आगे बढ़ता रहा वो एकदम दरक गया। मानों लेखिका कहना चाहती हो ज़रूरी नहीं आप किसी के साथ अपना ज़्यादा से ज़्यादा वक्त गुज़ार लें फिर भी उसे पहचान लेने का दावा कर सकें। एक चेहरे में छिपे हैं कई-कई आदमी जब भी देखना ज़रा गौर से देखना। लेखिका के साथ यही हुआ काँच छन्न से टूट गया। वो इंसान जिसने उन्हें कदम-कदम पर स्त्रियों के हक़ के लिए लड़ना सिखाया हो, बोलना सिखाया हो, लिखना सिखाया हो यदि

अचानक वो ही उन्हें ऐसे विमर्श से हटने को कहने लगे तो कैसा लग सकता है! ये शायद लेखिका से बेहतर कोई नहीं जान सकता। शायद वो अब भी उतना नहीं कह पाईं, जितना अन्दर रख लिया। किस अंदरूनी कशमकश से गुज़री होंगी वो उस दौर में, इसका तो अंदाज़ा लगाना भी आसान नहीं। जिसे अपना गुरु, पथ प्रदर्शक माना हो, अपना सबसे अच्छा दोस्त माना हो, जिससे आप अपने घर परिवार की, पति-पत्नी के संबंधों की वो बातें भी कह सुन सकते हों, जो शायद अपने पति से भी कोई पत्नी कभी न कह पाती हो, यदि वो ही आपको दबाने लगे, चुप रहने को कहने लगे और आपको बीच समंदर में अकेला छोड़ दे तो कैसा लगता होगा ये वो ही जानता है जिस पर गुज़री हो। लेकिन इस किस्से से जो एक बात सामने आई वो यह कि राजेन्द्र जी चाहे जितना ऊँचा नाम रहे हों, लेकिन उनके अन्दर के मर्द के अहम् को चोट लगती है, वो भी बाकी मर्दों से इतर नहीं क्योंकि कौन कह सकता है या कौन जान सकता है, जो मर्दों की पार्टियाँ होती हैं या कहिये साहित्यकारों की पार्टियाँ होती हैं उसमे किस हद तक बातें होती हैं और फिर राजेंद्र जी जैसी शख्सियत हो सकता है बढ़ा चढ़ा कर कह देते हों अपने संबंधों के बारे में लोगों से सिर्फ अपना दबदबा दिखाने को, सबकी नज़र में चढ़ने को; क्योंकि जो इंसान अपने पिता के शब्द बर्दाश्त न कर पाया हो वो किसी भी हद तक जा सकता है। कौन जानता है उन पार्टीज में महिलाओं और उनके लेखन के लिए कैसी बातें होती हों और शायद जो भी अच्छा या बुरा मैत्रेयी जी के बारे में कहा गया वो उन्हीं का उड़ाया हो, क्योंकि बिना आग के धुँआ नहीं होता जैसे, वैसे ही बे सिरपैर की बातें ऐसे ही उड़ाई जाती हैं फिर यह साहित्य की दुनिया है, यहाँ तो आज भी ऐसा हो रहा है फिर वो तो राजेंद्र यादव थे उनके बारे में तो विरोधियों को भी मसाला चाहिए होता होगा, ऐसे में यदि वो कोई बात अपनी शेखी बघारने को हलके में भी कहते हों तो संभव है उसे नमक मिर्च लगाकर आगे फैलाया जाता रहा हो। होने को कुछ भी हो सकता है। लेकिन हम बात करते हैं लेखिका और राजेंद्र जी के संबंध की तो जब इस किताब को मैं पढ़ रही थी तो मुझे अपनी लिखी ही एक कहानी याद आ रही थी – 'अमर प्रेम' जहाँ पति, पत्नी और वो का त्रिकोण है जिसमे तीसरे कोण को स्वीकारा गया है पति द्वारा, जो कम से कम हमारे आज के समाज में फिलहाल तो संभव नहीं मगर मैत्रेयी जी और उनके परिवार के संबंध देखकर यही लगता है जैसे इन तीनों ने इस रिश्ते को जीकर मेरी कहानी को ही सार्थकता प्रदान की हो। यहाँ गुरु शिष्या का रिश्ता था, दोस्ती का रिश्ता था तो एक आत्मिक संबंध था जो दोस्ती या गुरु शिष्य के संबंध से भी ऊपर था; जिसमें पूरी पवित्रता थी। ज़रूरी नहीं शारीरिक संबंध बनें ही यदि वो स्त्री और पुरुष हैं तो बिना संबंध बनाए भी किसी रिश्ते को कैसे जीया जाता है, कैसे निभाया जाता है ये शायद इन्हीं के रिश्ते में देखने को मिलता है, अब कयास लगाने वाले चाहे जो कयास लगाएँ या कहें अपनी आत्मा के आईने में लकीर नहीं होनी चाहिए और यही तो लेखिका ने लिखकर साबित किया, मानों उन सब बड़बोलों को चुप कराने को ही लेखिका ने अब अपने संबंध की पवित्रता उजागर की हो और कयासों को विराम दिया हो।

किसी भी संबंध की सार्थकता उसकी गहराई में होती है और यहाँ अनेक असहमतियाँ होने के वाबजूद भी किसी ने किसी को नहीं छोड़ा। अंत तक निबाहा और शायद यही इस रिश्ते की सबसे बड़ी खूबसूरती है।

आज साहित्यिक समाज जो चाहे सोचे जो चाहे कहे मगर लेखिका ने अपने संबंध

की परत-दर-परत उधेड़ दी वरना चाहतीं तो राजेन्द्र जी की नकारात्मक छवि को छुपा भी सकती थीं; लेकिन उन्होंने कहीं कुछ नहीं छुपाया बिना लाग लपेट के ज्यों का त्यों धर दिया, बस यही उनकी सच्चाई का प्रमाण है। लेखिका कितना द्वंद्व में घिरी, कितनी छटपटाहट से गुज़री और फिर अपने अंतर्विरोधों से खुद को वापस मोड़ा ये पंक्ति दर पंक्ति सामने दीखता है, फिर लेखन से न्याय करना आसान नहीं। अपनी बेचैनी और पीड़ा से एक युद्ध लगातार चलता रहा लेखिका का और उस सबके साथ हर रिश्ते के साथ न्याय करते चलना, अपने लेखन को भी जगह देते चलना आसान नहीं मगर लेखिका जैसे तलवार की धार पर चलीं सिर्फ अपने लेखन के जूनून के बलबूते। निजी और साहित्यिक जीवन के मध्य समन्वय स्थापित करना आसान नहीं होता ये वो दलदल है जिसमें एक बार धंसे तो कीच लगे बिना बाहर नहीं निकल सकते क्योंकि यहाँ ऊपर चढ़ाने वाला यदि एक हाथ होगा तो खींचने वाले हज़ार। यहाँ तो बिना किसी प्रतिस्पर्धा के स्पर्धा होती है, उसकी लेखनी मेरी लेखनी से बेहतर कैसे की तर्ज पर सरकारें बनाई और मिटाई जाती हैं ऐसे में लेखिका ने संतुलन स्थापित करते हुए अपना सफ़र तय किया जिसमे राजेन्द्र जी जैसे पथ प्रदर्शक, गुरु, दोस्त ने उनका साथ दिया।

जब कोई सिर्फ एक पाठक के नाते इस किताब को निष्पक्ष होकर पढ़ेगा तभी उसकी सच्चाई या प्रमाणिकता को स्वीकार कर सकेगा लेकिन जो लोग पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं उनसे कोई उम्मीद नहीं की जानी चाहिए।

अब लेखिका ने जो शीर्षक दिया है वो तो अपने आप में एक खोज का विषय है लेकिन उसके विषय में सिर्फ यही कहना चाहूँगी :

वो सफर था कि मुकाम था,
ये तुझे पता न मुझे पता,
फिर भी इक फलसफा लिखा गया.....

❒❒❒

डी - 19 राणा प्रताप रोड
आदर्श नगर
दिल्ली - 110033
मोबाइल : 9868077896

पुस्तक चर्चा

पहाड़ पर धूप

यादवेंद्र शर्मा

पुस्तक: पहाड़ पर धूप (कहानी संग्रह)
लेखक: मुरारी शर्मा
प्रकाशक: अंतिका प्रकाशन

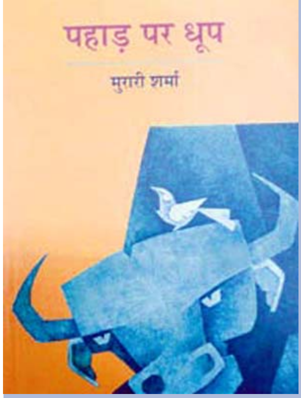

हाल ही में मुरारी शर्मा का दूसरा कहानी संग्रह पहाड़ पर धूप प्रकाशित हुआ है। जिसमें दस कहानियाँ संकलित हैं। जिनमें पहाड़ पर धूप, तुम अब भी वैसे हो, पत्थरों में आग, प्रेत छाया, मोरपंख और खूबसूरत चेहरे, एक टूटता हुआ बरगद, प्रीतो नदी हो गई। शापित गाँव की प्रेम कथा, रिहर्सल, पैगाम शामिल है। इन कहानियों में हिमाचल के बदलते गाँवों तथा कस्बों की झलक देखने को मिल जाती है। यह ठीक है कि हिमाचल का जनजीवन ऊपर से देखने पर शांत तथा निर्मल दिखाई देता है। यहाँ महानगरों जैसी आपाधापी तथा व्यक्ति केंद्रिता नहीं है, तब भी भीतर ही भीतर कुछ न कुछ बनाव और बिगाड़ चलता ही रहता है। शायद जीवन इसी का नाम है।

पहाड़ पर धूप कहानी रोज़गार के लिए शहर गए बेटे और उसके गाँव न पलट आने की मजबूरी को व्यक्त करती है। माता -पिता बेटे तथा बहू के सानिध्य से वंचित हैं। रोज़गार के लिए होने वाला विस्थापन आज की आम तथा कड़वी सच्चाई बन चुकी है। संबंधों की उष्मा छिजती जा रही है। पारिवारिक पृष्ठभूमि पर लिखी एक अन्य कहानी है- एक टूटता हुआ बरगद। इस कहानी में संयुक्त परिवार के टूटने तथा आर्थिक अभाव की दशा का वर्णन है। बड़े भाई पर छोटे भाइयों को पाँव पर खड़ा करने का दायित्व आ जाता है। भाइयों का अलग हो जाना और बड़े भाई द्वारा अपने परिवार को अपनी तरह से चलाने की उथल-पुथल स्पष्ट दिखती है। तुम अब भी वैसे हो। वैसे ये एक प्रेम कहानी है लेकिन दक्षतापूर्वक बचपन की यादों को जीवंत बना डाला है। पत्थरों में आग हाल ही में घटी घटनाओं पर केंद्रित कहानी है। मेलों-ठेलों को ऊँचा दर्जा देकर मेलों के प्रबंधन को प्रशासकों के हवाले करने का विकल्प ढूँढ़ा गया है। प्रेतछाया तथा प्रीतो नदी हो गई कहानियों पर पर्यावरण चेतना तथा बेटी बचाओ कार्यक्रमों का प्रभाव है।

प्राय: हिमाचल को देवभूमि कहने का प्रचलन है, लेकिन मोरपंख और खूबसूरत चेहरे कहानी इस आत्मश्लाघा पर प्रश्नचिह्न लगाती है। हिमाचल के अंदरूनी हिस्सों में देवता के नाम पर किया जाने वाला जातीय भेदभाव आधुनिक समाज में असहनीय है। अब देवता ही यहाँ की सर्वोच्च सत्ता है। जब देवता है तो मेले हैं, लोकगीत हैं...बजंतरी है, गूर है, पुजारी और कारदार है, छुआछूत है, शोषण की एक पूरी और संगठित व्यवस्था है।

संग्रह की इन कहानियों में आंचलिक शब्दों का प्रयोग कहानियों को सहजता तथा गति प्रदान करता है। कहानियों का संगठन चुस्त-दुरुस्त है तथा कहीं बिखराव नहीं है। जनजीवन पर लेखक की अच्छी पकड़ है, इससे कहानियाँ सहज ही यर्थाथवादी स्वरूप ग्रहण कर लेती है। एक दो कहानियों से ऐसा भी लगा जैसे कि लेखक उनके फिल्मांकन पक्ष को उभार रहा है। इसमें कोई बुराई नहीं है। यदि कहानियों पर टेली फिल्में बनने लगें तो टीवी पर आए दिन परोसे जा रहे कचरे से दर्शकों को मुक्ति तो मिलेगी।

❒❒❒

117/6 लोअर बाड़ी, सुंदरनगर -1, पिन-175018
जिला मंडी -हिमाचल प्रदेश।

समीक्षा

मानवीय संवेदना और प्रेम

शिखा वार्ष्णेय

पुस्तक: उडारी (कहानी संग्रह), लेखक: अरुणा सब्बरवाल
प्रकाशक: अयन प्रकाशन

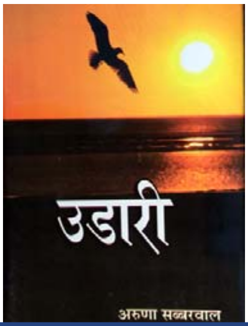

अरुणा सब्बरवाल जी का नया कहानी संग्रह जब हाथ में आया तो सबसे पहले ध्यान आकर्षित किया उसके शीर्षक 'उडारी' ने। जैसे हाथ में आते ही पंख फैलाने को तैयार। लगा कि अवश्य ही यथार्थ के आकाश पर कल्पना की उड़ान लेती कहानियाँ होंगी और वाकई पहली ही कहानी ने मेरी सोच को सच साबित कर दिया। संग्रह के शीर्षक वाली पहली कहानी – उडारी– कठोर यथार्थ पर मानवीय संवेदना और प्रेम की कहानी है। जज़्बातों की उड़ान की कहानी है। अपनी भावनाओं और सामाजिक बंधनों में बंधी एक औरत की कहानी है, जो अपनी ज़िन्दगी अपने तरीके से जीना चाहती है और सामाजिक बंधनों को परे रख, अपने पँख पसार कर, खुशियों के आकाश में उड़ जाना चाहती है।

इस संग्रह में कुल पन्द्रह कहानियाँ हैं और सभी कहानियाँ एक वृहद् कैनवास पर जीवन के विभिन्न आयामों को अनेक रंगों में चित्रित करती हैं जिसमें प्रेम का रंग सबसे अहम है। प्रत्येक कहानी जीवन से जुड़ी कहानी है जैसे हमारे ही आसपास की कोई घटना हो। कहानी पढ़ते हुए उसके चरित्र अपने से ही लगने लगते हैं। कई बार लगता है कि जैसे उस व्यक्ति को हम पहचानते हैं या यह तो मेरी ही कहानी है और यह किसी भी कहानी की सफलता का मज़बूत मापदंड है। सभी कहानियों का कथ्य, चरित्र चित्रण, और कथा विन्यास प्रभावशाली है।

अरुणा जी कि इन कहानियों की शैली अधिकांशत: संवादात्मक है। लेखिका कभी स्वयं से तो कभी उसके पात्र स्वयं से संवाद करते हुए कहानी को गति देते हैं। ये संवाद जितने सच्चे प्रतीत होते हैं उतने ही रोचक और सरल भी हैं अत: पाठक के मन पर तुरंत ही प्रभाव छोड़ते हैं। अरुणा जी ने भारत और यूके का जीवन समान रूप से देखा और जिया है, अत: ज़ाहिर है कि दोनों देशों के सामाजिक परिवेश का संगम उनके लेखन में नज़र आता है।

संग्रह की – मरीचिका, पहली छुअन, मी टू, तुम और मैं, सोल मेट आदि कहानियों में, एक आम इंसान की ज़िन्दगी के छोटे–छोटे अहसास, अनुभूतियाँ, प्रेम और जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं के बीच संघर्ष, इच्छाओं, अरमान और समाज के यथार्थ के बीच पिसते इंसान और उसकी भावनाओं का एक मर्मस्पर्शी चित्रण है।

कहानी – उसका सच और ठहरा पानी, मानवीय संवेदना का चरम हैं। हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में भावनाओं का ठहराव और परिवेश का कठोर सत्य पात्रों के चरित्र और संवादों के माध्यम से प्रभावशाली तरीके से उभरता है। जब दाम्पत्य जीवन में शक का कीड़ा सिर उठाने लगे तो उसके परिणाम कितने दुखद हो सकते हैं, इसका बहुत मार्मिक रूप प्रस्तुत किया है –कहानी 'उसका सच' में। वहीं 'वह पहला दिन' और 'बेनाम रिश्ते' जैसी कहानियों में अपने देश से बाहर रहने की और देश में वापस लौटने की छटपटाहट और नॉस्टेल्जिया लगातार झलकता है।

इस संग्रह में एक बेहद खूबसूरत कहानी है – इंग्लिश रोज़ – यह भारतीय मानसिकता और संस्कृति की आड़ में उसकी कमियाँ बताती और पश्चिमी संस्कृति के प्रति उसके पूर्वाग्रह को ध्वस्त करती एक सशक्त और पठनीय कहानी है। एक भारतीय नारी अपने विवाहित जीवन के कटु अनुभव के बाद एक नया कदम उठाना चाहती है। उसका अतीत और समाज उसे डराता है। कहानी उसके मानसिक संघर्ष को चित्रित करती है और पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के बारे में एक सकारात्मक दृष्टिकोण उपलब्ध कराती है।

मुझे संग्रह की सबसे खूबसूरत कहानियाँ लगीं – शीशे का ताजमहल और 16 जुलाई 1080, दोनों ही कहानियाँ मानवीय ह्रदय की तह में जाकर उसकी संवेदना को पाठक के ह्रदय में कुछ इस तरह रोपित करती हैं, कि पाठक स्वयं को उसी परिस्थिति और जगह पर महसूस करने लगता है। दोनों ही कहानियों का विषय लगभग एक जैसा है और दोनों कहानियाँ अपने पात्रों के माध्यम से अपने मोह और स्वार्थ से परे, समाज और उसके लोगों के भले के लिए अपना योगदान और त्याग देने के लिए प्रेरित करतीं हैं। कहानी का कथानक और भावनाओं पर पकड़ इतनी मज़बूत है कि कहानी कहीं भी उबाऊ नहीं होती और अंत तक पाठक की उत्सुकता बनी रहती है। लेखिका की कथानक, चरित्रों, भावों और प्रस्तुतीकरण पर पकड़ मज़बूत है। बस एक कमी बार–बार पुस्तक पढ़ते हुए खलती है– वह है लगभग हर पन्ने पर टाइपिंग या प्रूफ रीडिंग की गलतियाँ,हालाँकि ये गलतियाँ सूक्ष्म हैं और पूर्णत: प्रकाशन संबंधी हैं फिर भी कहानियों के प्रवाह को क्षण भर के लिए रोकती सी लगती हैं; हालाँकि कथानक और उनका शिल्प, भाव ऐसा है कि इसके बावजूद भी पूरी कहानी पढ़ा ले जाता है।

आख़िर में कहूँगी कि ''उडारी'', विविध विषयों से भरा हुआ, दो भिन्न समाज और परिवेश में आम जीवन को दर्शाता हुआ एक सशक्त कहानी संग्रह है।

❒❒❒

21वीं शती का नारी-विमर्श

डॉ. ज्योति गोगिया

पुस्तक: धूप से रूठी चाँदनी (कविता संग्रह); लेखक: सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक: शिवना प्रकाशन

कुछ वर्ष पूर्व जब भी प्रवासी हिन्दी साहित्य की बात आती तो उसमें इंग्लैंड और मॉरीशस इत्यादि में लिखे गए साहित्य की चर्चा होती थी, लेकिन विश्व हिन्दी सम्मलेन 2007 के दौरान अमरीकी हिन्दी रचनाकारों की 250 प्रकाशित पुस्तकों की प्रदर्शनी ने सबको यह सोचने के लिए मज़बूर कर दिया कि अमेरिका में भी बहुत बड़ी मात्रा में हिन्दी साहित्य लिखा जा रहा है। निस्संदेह विदेशों में बसे भारतीय हिन्दी रचनाकारों द्वारा सृजित साहित्य अधिकतर नॉस्टेल्जिया का साहित्य है, उनमें भारत की यादें मुख्य रूप से दृष्टि गोचर होती हैं। भारतीय जीवन, तीज, त्योहर, रिश्ते, नातें के साथ-साथ देश से प्यार की बातें चित्रित है। जहाँ तक अमेरिकन रचनाकारों की बात है, उन्होंने जिस ज़मीन पर रहकर जो भुगता है, उसका भी चित्रण किया है। अमरीकी हिन्दी महिला रचनाकारों की कृतियाँ भारत से बाहर होने की विडंम्बना और वहाँ की मशीनी ज़िंदगी से आक्रांत हैं, तो बहुत से रचनाकारों की रचनाएँ नारीवाद का रूप भी स्पष्ट करती हैं।

इन रचनाकारों ने अपनी कविताओं में अमेरिका की दुहरी ही नहीं चुहरी ज़िंदगी जी रहे आम लोगों और विशेषकर भारतीय नारी के जीवन का जीवंत चित्रण करके पाठक को सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। उपेक्षा व तिरस्कार उसे विरासत में मिले हैं। जैसा कि सुमन राजे ने लिखा है अपने समय और साहित्य में मौजूद रहने पर भी उपस्थिति का साक्ष्य इतिहास में दर्ज़ होकर ही मिलता है और सच यह है कि सबसे अधिक छल स्त्रियों के साथ इतिहास में ही किया गया। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि उपेक्षा से मारक कोई अस्त्र नहीं होता। विज्ञान, सभ्यता और संस्कृति के चरम पर विराजमान अमेरिका में भारतीय नारी की स्थिति संतोषजनक नहीं है। जहाँ एक तरफ भारतीय स्त्रियों से भारतीय बने रहने की अपेक्षा की जाती है, वही कार्यदक्षता में उनसे अपेक्षा की जाती है कि बिना अमरीकी जीवन शैली अपनाए अमरीकी बन जाए।1 जबकि पुरुष की भूमिका सिर्फ कमाने की ही होती है। अमरीकी पुरुष की तरह वह घर के कामकाज का सहभागी नहीं है। डॉ. सुधा ओम ढींगरा का साहित्य भी नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को छूता हुआ उसकी पीड़ा को वाणी देता है। डॉ. सुधा अमेरिका में महिलाओं की अनेक संस्थाएँ चलाती हैं। जिससे असंख्य महिलाओं से उनका जुड़ाव है। जालन्धर की प्रवासी रचनाकार सुधा जी जहाँ एक संवेदनशील कवयित्री हैं, वहाँ एक कहानीकार, उपन्यासकार, अनुवादक व शोधवेत्ता हैं। डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार से सम्मानित डॉ. सुधा ओम ढिंगरा ने अमेरिका में नारी की दयनीय दशा को कलमबद्ध किया है। अमेरिका जैसे ससुभ्य, सुसंस्कृत, अत्याधुनिक व संपन्न देश में भी औरतों के साथ दुर्व्यवहार व बदसलूकी होती है उसका चित्रण झिंझोड़ने वाला है। माँ ने कहा था, कावित में लिखती हैं -

मैंने ज़िद की थी
मत भेजो पश्चिम में
सूरज डूबता है वहाँ
आदमी बस ऊबता है वहाँ।

दु:ख की बात है कि औरत की स्थिति और भी शोचनीय है। अनकही बात कविता में लिखती हैं-

तेरी यादों की रेतीली कतारों में
लौटूँगी नहीं अब तेरे साये में
तूने प्यार किया मुझे
पर मार डाला मेरी मैं को
नकार दिया मेरे अहम् को
अब दाग लगें दामन पर जितने
मैं सह लूँगी
दुनियाँ जो कहे मैं झेलूँगी
तू जो कहे तो चुप न रहूँगी
मैं अपनी लाश को कंधों पर उठाए वीरानों में
दो कंधे और ढूँढूँगी
जो उसे मरघट तक पहुँचा दें......

नारी पर ऐसा मानसिक अत्याचार ज़माने से होता आया है। सदियों से स्त्री हाशिए में फैंकी गई। उसे वाणीहीन, मस्तिष्कहीन, अस्तित्वहीन किया गया; लेकिन आज नारी इस निमर्म शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठाती है। सुधा जी भारतीय मिथकीय नारी पात्रों के माध्यम से वर्तमान नारी-स्वर को उभारती हैं। कभी उनकी कमज़ोरियों को ललकार कर, कभी उनके भीतर छिपी शक्ति को पहचानकर और कभी कमज़ोर करने वाली परिस्थितियों में नारी पुरुष के बीच खड़ी की गई असमानता को वह असामान्यता का नाम देती हैं.....

राम बने तुम अग्नि परीक्षा लेते रहे,
भावनाओं के जंगल में
बनवास मैं काटती रही,
देवी बना मुझे

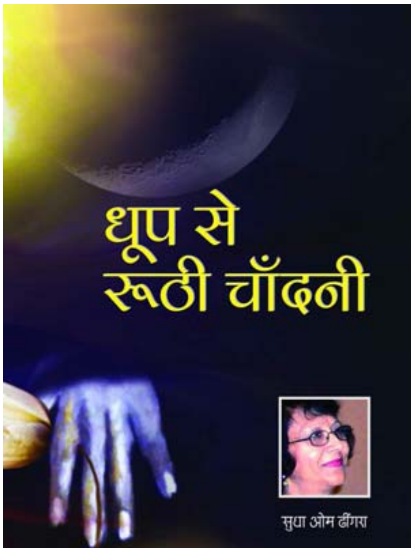

पुरुषत्व तुम दिखाते रहे
सती बन सतीत्व की रक्षा
मैं करती रही
स्त्री-पुरुष दोनों से
सृष्टि की संरचना है,
फिर यह असामान्यता क्यों ?

नारी की कोमलता को कमज़ोरी बना दिया गया। पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ निभाती, ममत्व को सहेजती, पुरुष को सँभालती, मोम की गुड़ियाँ कहलवाने वाली कोमल नारी को कमज़ोर कहना अपने आप में एक अन्याय हैं। वह प्रश्न करती हैं.....

पुरुष ने
भावनाओं के कंकरों
से बींध डाला....
शीशे में लिपटी
मोम की गुड़िया
न पिघली,
न टूटी,
न बिखरी,
आँचल में बच्चों को समेटे,
मल्लिका सी नाज़ुक वह
वृक्ष रूपी पुरुष को
अपने बदन से लिपटाए
मजबूत खड़ी
प्रश्न सूचक आँखों से
तकती है.....
वह कमज़ोर कहाँ हैं.....

स्त्री-मुक्ति की कामना उनकी कविताओं में तीव्रता से उभरकर आई है। आज स्त्री अपने अस्तित्व और पहचान को बनाए रखने के लिए समाज को चुनौती देती हुई कहती है-

पर मार डाला मेरी मैं को
नकार दिया मेरे अहम् को
महज बच्चों की माँ समझा
वंश बढ़ाने का बस एक
माध्यम ही समझा
पर उसे इंसान नहीं समझा।

अपना अस्तित्व, अपनी पहचान, अपना व्यक्तित्व उसके लिए महत्त्वपूर्ण है। उनके भीतर की टीस, पीड़ा व कसक इसी के आस-पास घूमती है। इसी की तलाश में वह अलगाव व अकेलेपन का बोझा ढोने को विवश है।

स्वाभिमान मेरा
अहम् तुम्हारा
अकड़ी गर्दनों से अड़े रहे हम
आकाश से तुम
धरती सी मैं
क्षितिज तलाशते रहे हम

उपलब्धियों का आसमान छूने पर भी वे कितने विवश है।

आसमान छूते
नीड़ तलाशते
चोंच से चोंच लड़ाते रहे हम।

नारी का अस्तित्व, पहचान का संकट उनकी कविताओं की सबसे बड़ी पीड़ा है; जिसने उनकी लेखनी में अद्भुत तेजस्विता भरी है। स्त्री से संबंधित मुद्दों की वह प्रखर वक्ता बन कर उभरी हैं। पुरुष की स्वार्थ मानसिकता, स्त्री का संघर्ष, शोषित स्त्री का विद्रोह, स्त्री की जिजीविषा इत्यादि बातें स्पष्ट रूप में उनकी कविताओं में दिखती हैं व तेज़ी से बदलते समाज के सनातन प्रश्नों पर तीखे सवाल खड़े करती हैं। प्रश्न चाहे नहीं बदले हैं पर उनके प्रति नारी की मानसिकता, उसकी सोच अवश्य बदली है। वह निराश, हताश नहीं, अपने हक प्राप्त करने के लिए स्वंय आगे बढ़ने के लिए प्रतिबद्ध है जो अनुकरणीय है-

मैं ऐसा समाज निर्मत करूँगी
जहाँ औरत सिर्फ माँ, बेटी
बहन, पत्नी या प्रेमिका ही नहीं
एक इंसान सिर्फ इंसान हो
उसे इसी तरह जाना
पहचाना और परखा जाए।

❑❑❑

विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर।

तरही मुशायरा

इस बार ईद के अवसर पर "बहरे हज़ज मुसमन मकफ़ूफ महज़ूफ" पर आयोजित किए गए मुशायरे का तरही मिसरा था – कहती है ये ख़ुशियों की सहर, ईद मुबारक

सौरभ पाण्डेय

पिस्तौल-तमंचे से ज़बर ईद मुबारक़
इन्सान पे रहमत का असर ईद मुबारक़
पास आए मेरे और जो आदाब सुना मैं
मेरे लिए अब आठों पहर ईद मुबारक़
हर वक़्त निग़ाहें टिकी रहती हैं उसी दर
पर्दे में उधर चाँद, इधर ईद मुबारक़
जब धान उगा कर मिले सल्फ़ास की पुड़िया
समझो अभी रमज़ान है, पर ईद मुबारक़
तू ढीठ है बहका हुआ, मालूम है, लेकिन
सुन प्यार से.. बकवास न कर.. ईद मुबारक़
जो बीत गई रात थी, 'सौरभ' उठो फिर से
कहती है ये ख़ुशियों की सहर, ईद मुबारक

निर्मल सिद्धू

सब उसका करम उसकी मेहर ईद मुबारक
हर शय का है पैग़ामे-नज़र ईद मुबारक
फूलों ने दिया कलियों को जो ईद का तुहफ़ा
मख़मूर हुए गाँव-नगर ईद मुबारक
जन्नत का संदेशा, है दिया चाँद ने शब को
कहती है ये ख़ुशियों की सहर ईद मुबारक
नफ़रत को मिटा कर ये मुहब्बत को बसा दे
ऐसा जो कहीं कर दे असर, ईद मुबारक
तस्वीर संवर जाएगी उस पल ही जहाँ की
निकले जो दुआ बनके अगर ईद मुबारक
'निर्मल' भी हुआ आज तो मस्ती में दिवाना
जब उसने कहा जाने-जिगर ईद मुबारक

गिरीश पंकज

खुशहाल रहे आपका दर ईद मुबारक
"कहती है ये खुशियों की सहर ईद मुबारक"
हिद्दत सही रमजान में दय्यान के लिए
महका रहा है तुमको इतर ईद मुबारक
तुमको नहीं देखा है ज़माने से दोस्तो
इस बार तो आना मेरे घर ईद मुबारक
अल्लाह ने बख्शी है हमें एक ये नेमत
मिलजुल के ज़िन्दगी हो बसर ईद मुबारक
छोटा - बड़ा है कोई नहीं सब हैं बराबर
रमजान दे रहा है ख़बर ईद मुबारक

❑❑❑

समीक्षा

शुभ की प्रार्थना में जुड़े हाथ

योगिता यादव

पुस्तक: लौट आया मधुमास (कविता संग्रह); लेखक: शशि पाधा
प्रकाशक: अयन प्रकाशन

प्रत्येक पुस्तक किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का सार होती है। जीवन भर के उसके अनुभवों, उनसे उपजी अनुभूतियों और प्रति उत्तर में उसके अपने समाधानों का निचोड़ होती कही जा सकती है उसकी किताब। आज जो किताब मेरे हाथ में है उसका शीर्षक है 'लौट आया मधुमास'। यह जम्मू की बेटी ओर प्रवासी लेखिका शशि पाधा जी का चौथा काव्य संग्रह है। मधुमास यानी नायक-नायिका का केलि काल। जब वे दोनों ही प्रकृति के संपूर्ण सौंदर्य और रस का असीम पान करते हैं। परंतु यह केवल मधुमास नहीं, लौट आया मधुमास है। शीर्षक में ही एक लंबे सफर के तय हो जाने का संकेत मिलता है। -कि यह किसी लोकाचार से अबोध व्यक्ति का केलि काल नहीं है, बल्कि यह जीवन पथ पर सुघढ़ता से आगे बढ़ रहे एक परिपक्व व्यक्ति के सुंदर समय का उसके पास फिर से लौट आना है। कवयित्री जम्मू की बेटी हैं, सैन्य अधिकारी रहे जनरल केशव पाधा की पत्नी हैं और आत्मनिर्भर अपने परिवार को गरिमा से सँभाल रहे बच्चों की माँ भी हैं। कवयित्री

ज़िम्मेदारियों और अनुभवों का एक लंबा सफर तय कर चुकी हैं। रिश्तों के धरातल पर भरी हुई झोली, सौंदर्य की माप में असीम आँचल और सम्मान की दृष्टि से भी कोई कम नहीं है उनका वितान। फिर यह बेचैनी क्यों? मैं यह मानती हूँ कि कविता या गीत सिर्फ आनंद का ही स्रोत नहीं है, बल्कि यह कवि की बेचैनियों की भी उपज है। निश्चित रूप से कविता स्वांत: सुखाय है, लेकिन यह सिर्फ स्वांत: सुखाय ही नहीं है, इसके और भी कई प्रयोजन है। जब हम इन प्रयोजनों की खोज करते हैं तब सिद्ध होता है कि इस किताब को क्यों पढ़ा जाना चाहिए? हिंदी के असीम संसार में 'लौट आया मधुमास' की यह दस्तक क्यों खास है?, इसका संधान करने की मैंने यह छोटी सी कोशिश की है।

प्रस्तुत पुस्तक कवयित्री का चौथा काव्य संग्रह है। इससे पहले वे पहली किरण, मानस मंथन और अनंत की ओर शीर्षक से तीन काव्य संग्रह पाठकों के सुपुर्द कर चुकी हैं। प्रस्तुत संग्रह में सत्तर गीतों ने स्थान बनाया है। इनमें नए सरोकारों से जुड़े, नई भाषा और बिंब प्रयोग से बुने गए नवगीत भी शामिल हैं।

इसे मैं कवयित्री का अपने जीवन का चौथा फेरा कहूँगी। पिछले तीन फेरों में वे अनुगामिनी बनी सौंपे गए अनुभवों को अपने अनुभवों में समाहित करते हुए आगे बढ़ रहीं थीं। जबकि अब चौथे फेरे में आगे बढऩे की ज़िम्मेदारी उनकी है। अब वे अपनी निज अनुभूतियों से जीवन को देख रही हैं और इन दृश्यों को अपने साठोत्तरी नायक को नवल मधुमास की सौगात के रूप में सौंपती जा रहीं हैं। उनके पास केवल शब्द ही नहीं स्वर और ताल भी हैं। ये सब निधियाँ कवयित्री ने प्रकृति से ही पाईं हैं। यहाँ स्त्री ही प्रकृति है और प्रकृति ही नायिका है। वही धूप की ओढ़नी ओढ़ती है, वही तारों की वेणी सजाती है, पीली चोली में सजती है, तो वही माँग पर चंदा टाँकती है।

पहले ही गीत में अपने कौशल, अपनी दृष्टि और अपने सामर्थ्य को पुख्ता करती नायिका नायक से कहती हैं-

''मैं तुझे पहचान लूँगी
लाख ओढ़ो तुम हवाएँ
ढाँप दो सारी दिशाएँ
बादलों की नाव से
मैं तुम्हारा नाम लूँगी
रश्मियों की ओट में भी
मैं तुझे पहचान लूँगी''

एक और अनुच्छेद है -

''हो अमा की रात कोई
नयनदीप दान दूँगी
पारदर्शी मेघ में
मैं तुझे पहचान लूँगी''

प्रस्तुत संग्रह में प्रकृति तो अपने भरपूर सौंदर्य के साथ है ही, अपने देस अर्थात जम्मू (भारत) से दूर होने की पीड़ा भी है। वहीं बेटी, पत्नी और माँ के तीन फेरों की तीन

ज़िम्मेदारियों के समय को उन्होंने कैसे निभाया इसके सूत्र भी हैं। रिश्तों के टकराने, और कभी बंध जाने के अलग-अलग अनुभव भी हैं। इन अनुभवों से गुज़रते हुए उनमें जो बड़प्पन आया है, उसी का विस्तार है इस गीत में - जिसका शीर्षक है बड़े हो गए हम -

'सूरज ना पूछे
उगने से पहले
ना रुकती हवाएँ
उड़ने से पहले
कड़ी धूप झेली
कड़े हो गए हम
बड़े हो गए हम।'

प्रकृति के नाना रूपों के सौंदर्य से सजे इन गीतों में धूप, छाँव,

भोर, रात, सूर्य, रश्मियाँ,चाँद, चाँदनी बार-बार स्थान बनाते हैं। खास तौर से धूप के विविध रूप सर्वाधिक आकर्षक बन पड़े हैं। संभवतः धूप-छाँव और दिन-रात की इस आँख मिचौली की वजह कवयित्री का एक ऐसे देश में होना है जहाँ प्रकृति की चाल, दिन रात की चहलकदमी उसकी अपनी मातृभूति की प्राकृतिक चाल से अलहदा है। यहाँ दिन, तो वहाँ रात और वहाँ रात, तो यहाँ दिन। जैसे सूरज-चंदा इस परदेसन से आँख मिचौली खेल रहे हैं, हँसी ठिठौली कर रहे हैं। उस देश में जहाँ वर्ष का अधिक समय ठंडा, बर्फ में छुपा बीतता है, वहाँ वे आँखें मूँदती हैं तो उन्हें अपने देश की षट ऋतुएँ महसूस होती हैं। खिड़कियों में घुटी रहने वाली भावनाएँ धूप के सतरंगी दहलीज़े लाँघ जाना चाहती हैं। चाँदनी को अंजुरि के दोनों में पी लेना चाहती हैं। वे प्रकृति को अपनी बाहों में समेट लेना चाहती हैं पर बीच में बाधा है दूर देश की। वे हर घड़ी, पल, क्षण अपने देश की ऋतुओं को, प्रकृति के मनोहारी चित्रों को याद करती हैं और अपने मन के लिए सौंदर्य की मेखला बुनते हुए मनोहारी गीत रचती हैं। जिनका पाठ तो रसपूर्ण है ही, उनका गान भी चित्त को मोह लेने वाला है। मूलतः वे प्रकृति की कवयित्री हैं पर इसी संग्रह में उनके संकल्प गीत भी दिखते हैं, तो अध्यात्म की ओर बढ़ते हुए संपूर्ण रागात्मकता से विरक्त होने के संकेत भी मिलते हैं।

एकाकी चलती जाऊँगी
'संकल्पों के सेतु होंगे
निष्ठा दिशा दिखाएगी
साहस होगा पथ प्रदर्शक
आशा ज्योत जलाएगी
विश्वासों के पंख लगा मैं
नभ में उड़ती जाऊँगी
राहें नई बनाऊँ गी।'

एक अन्य स्वर पहचानिए खोल दे वितान मन शीर्षक गीत में -

''कल की बात कल रही, आज भोर हँस रही
हवाओं के हिंडोल पे, पुष्प गंध बस रही
उड़ रही हैं दूर तक, धूप की तितलियाँ
तू भी भर उड़ान मन,
खोल दे वितान मन।'

कभी-कभी चलते-चलते क्षण भर को हौंसला थकता भी है। इन थके हुए क्षणों में भी वे अपने प्रयास नहीं छोड़ती हैं। फिर भी समाधान हो यह ज़रूरी तो नहीं -

''बंधी रह गईं मन की गाँठें
उलझन कोई सुलझ न पाई
बन्द किवाड़ों की झिरियों से
समाधानों की धूप न आई
सन्नाटों के कोलाहल में
शब्द बड़ा लाचार देखा।'

ना थीं कोई ईंट दीवारें - शीर्षक से रचित इस गीत का शीर्षक संभवतः कुछ अलग रहा हो। इस गीत में सर्वाधिक लिखी गई पंक्ति है - 'मौन का विस्तार देखा।' वही इस रचना का मूल स्वर भी है। पर यह थकान उनका स्थायी भाव नहीं है, बल्कि उनकी मूल प्रवृत्ति तो आगे बढ़ते जाने की है। यही तो उन्होंने अपनी माँ और अपनी प्रकृति माँ से भी सीखा है। यही मूल वह अपने साथी और आने वाली पीढ़ियों को भी सौंपती हैं -

जल रहा अलाव -
'दिवस भर की विषमता
ओढ़ कोई सोता नहीं
अश्रुओं का भार कोई
रात भर ढोता नहीं
पलक धीर हो बंधा
स्वप्न भी होंगे वहीं।'

अपना देस, उसका सौंदर्य और प्रकृति के बिंब कवयित्री की स्मृतियों में ही नहीं बल्कि महसूस करने वाली इंद्रियों में भी साँस लेता है। तभी तो परदेस में जब हिमपात होता है, तो उसकी नीरवता को तो वे महसूस करती ही हैं, लेकिन श्वेत वर्णी दिशा-दशाओं के माध्यम से अपने कुल देवताओं को मनाने का दृश्य रचती हैं।

हिमपात गीत से -
'जोगिन हो गईं दिशा-दशाएँ
आँख मूँद कुल देव मनाएँ
मौन हुआ संलाप... चुपचाप-चुपचाप!'

प्रकृति के रंगों से सजी एक और सुंदर रचना है 'हरा धरा का ताप'

जेठ महीने की झुलसी पाती जब अंबर ने पाई तो उसने अपनी गठरी में बंधी नेह की बूँदे धरा पर उड़ेल, उसका ताप हर लिया है। धरती को अकसर आकाश या सूर्य को मीत बनाने के कई बिंब कवियों ने रचे हैं पर यहाँ कवयित्री सागर को धरती का और बादल को अम्बर का मीत बताती हैं। इस मित्रता में सहचर्य है। साथ-साथ हर रिश्ते की रीत निभाने का मूक वचन भी है। देखें -

''धरती-सागर, अम्बर-बादल
बरसों के हैं मीत
हर पल अपना सुख-दुख बाँटें
रिश्तों की हर रीत''

जीवन एक परतीय नहीं होता, इसकी कई परतें और कई डाइमेंशन होती हैं। यही वजह है कि एक लेखक कभी एकालाप के अनुभवों का गान करता है, तो कभी सामुहिक सौहार्द के आह्वान के गीत लिखता है। यह तभी संभव है जब आपमें जीवन को कई डाइमेंशन से देख सकने की दृष्टि का विकास हो चुका हो। दृष्टि का यही विकास लेखक को लगातार अलग-अलग विषयों पर लिखने को प्रेरित करता है। वह कभी निज अनुभूतियों को स्वर देता है, तो कभी बाह्य अनुभूतियों अर्थात् अपने आसपास घटित हो रही घटनाओं पर कलम चलाता है। वे प्रकृति की संतानों के द्वेष को देख कर दुखी है। बेटियों के साथ हो रहे अत्याचार पर शस्त्र उठा लेने का आह्वान भी करती हैं। द्रौपदी की सी पीड़ा झेल रही बेटियों के लिए वे सृष्टि के पालनहार कान्हा से सीधा संवाद करती हैं। साथ ही प्रकृति के साथ असभ्य खिलवाड़ कर रहे मनुष्य को चेताती भी हैं कि अब भी नहीं रुके तो ये पशु, ये देवदार केवल किताबों के चित्र रह जाएँगे।

अपनी पीड़ा को समेटते हुए व्यथित मन में वे कहती हैं

कि मन की व्यथा आज किसको सुनाएँ -

'जहाँ देखो भवनों के पर्वत खड़े हैं
ये मौसम ना आने की ज़िद पे अड़े हैं
घुलती रही हर नदी आँख मींचे
बहती रहीं रात भर वेदनाएँ
मन की व्यथा आज किसको सुनाएँ।'

पर कवि कोई साधारण मानव भर नहीं है। वह केवल वही नहीं बता रहा कि क्या है, वह समाधान रूप में यह भी बता रहा है कि क्या होना चाहिए। वह सृजनकर्ता है। वह अपनी इच्छित दुनिया रचने का सामर्थ्य रखता है। इसी सुंदर दुनिया को रचते हुए कवयित्री प्रस्तुत स्वर के विपरीत स्वर का गीत रचती हैं - दीवानों की बस्ती -

"उलझन की ना खड़ी दीवारें
ना कोई खाई रिश्तों में
मोल भाव ना मुस्कानों का
ले लो जितना किश्तों में
खुले हाथ बिकती हैं खुशियाँ
भर लो झोली सस्ती में।"

एक भारतीय नागरिक और सैन्य अधिकारी की पत्नी होते हुए वे चिंतित हैं और चेतावनी के स्वर में कहती हैं-

"सरहदों पे आज फिर
आ खड़ा शैतान है
रात दिन आँख भींचे
सोया हिंदुस्तान है।"

वहीं वर्ष 2016 में भारतीय सेना द्वारा की गई सर्जिकल स्ट्राइक के बाद गर्वोन्नत सैन्य अधिकारी की पत्नी त्वरित भावों से उपजा गीत 'अचूक प्रहार' रचती हैं।

'गर्वित जन-जन मुदित तिरंगा
सही समय, आघात सही।
रह गए कायर छिपते-छिपाते
रस्ता कोई सूझा ना
वीर सेनानी की मंशा का
भेद किसी ने बूझा ना।'

यह त्वरित भाव था, जिस भाव में उस समय लगभग पूरा देश गर्वोन्नत हो रहा था। लेकिन यह न अंत था, न समाधान। शुभ की स्थापना की राह में हिंसा समाधान हो भी कैसे सकती है। यह तो गाँधी का देश है। यहाँ की मिट्टी में युद्ध के नहीं बुद्ध के संस्कार हैं। गर्वोन्नत होकर सैन्य कामयाबी पर गीत रचने वाली यह कवयित्री जम्मू की बेटी भी तो है। जो जानती है कि गोली कहीं से भी चले, सूनी तो किसी माँ की गोद ही होती है। तोपों के मुँह इस ओर हों या उस ओर लहूलुहान तो सीमा ही होती है। सीमांत गाँवों के रुदन और पीड़ा को महसूस करते हुए वे कुछ अंतराल पर एक और गीत रचती हैं, 'सीमाओं का रुदन'

ये एक माँ का रुदन है, जिसने राजनीतिक बिसात पर प्यादे की तरह इस्तेमाल हो रहे अपने लाल खोए हैं और लगातार खो रही है। वह कहती है,

"जहाँ कभी थी फूल क्यारी
रक्त नदी की धार चली
बिखरी कण-कण राख बारूदी
माँग सिंदूरी गई छली
शून्य भेदती बूढ़ी आँखें
आँचल छोर भिगोती हैं
सीमाएँ तब रोती हैं।"

यह मधुमास एक-दूसरे को जानने की दैहिक अनुभूतियों का समय नहीं है, बल्कि संपूर्ण सृष्टि, मौजूदा परिवर्तनों, अपने समय और उसकी चुनौतियों को अपनी परिपक्व दृष्टि में तौलने का समय है। जहाँ निजी ज़िम्मेदारियों से ऊपर उठकर कवयित्री समष्टि के अपने दायित्वों की पहचान करती और करवाती हैं। अनुभवों के बीज मंत्र सौंपते हुए वे संकल्प राह पर प्रतिबद्ध रहने का पाठ पढ़ाती हैं।

कहन की शैली तो ध्यातन खींचती ही है, कुछ शब्दों के अभिनव बिंब भी याद रह जाते हैं जैसे हाथ से हाथ की, मेखलाएँ गढें अथवा हठी नटी सी मृगतृष्णाब, कितना नचा रही।

पुरवाई, अखुँआई, धूप, साँझ, सूर्य, रश्मियाँ, गठरी, गाँठें ये ऐसे शब्दा हैं जो गीतों में अलग-अलग बिंब विधान के लिए प्रयोग किए गए हैं और जिन्होंनने गीतों को अलंकृत भी किया है। कवयित्री प्रयोग से भी नहीं चूकतीं, उनका अपना व्यांकरण है। वे गीत के सौंदर्य में अभिवृदिध करने हेतु शब्दों को मनचाहे अंदाज में बरतती हैं। यथा - पतझड़ का पतझार, रेखा का रेख, आभा के लिए आभ, इंद्रधनुष के लिए इंद्रधनु। फूलों से लदी लताओं, घुँघरुओं से सजी झाँझरों और हवाओं संग उड़ते रंगों के इन गीतों में कुछ ऐसे शब्दा प्रयोग भी मिलते हैं, जो तमाम रागात्मगकता से विरक्तो होकर कहीं किसी की प्रतीक्षा, किसी वैराग और अध्या त्मा की ओर संकेत करते हैं। जैसे मन मोरा आज कबीरा, बंजारन, योगिनी, जोगिन आदि। संभवत: यह उनके अगले काव्य संग्रह के बीज हैं। जिनके लिए उनकी कलम अपने अनुभवों से ही स्याही सोखेगी। इसी शुभाकांक्षा के साथ इस पत्र को विराम देती हूँ। वैश्विक सुख की कामना में सब और सौंदर्य का आह्वान करती कवयित्री के ही शब्दों में -

"कहीं किसी भोले मानुष ने
जोड़े होंगे हाथ
विनती सुन अम्बर ने कर दी
रंगों की बरसात।"

❑❑❑

911, सुभाष नगर, जम्मू

तरही मुशायरा

इस बार ईद के अवसर पर "बहरे हज़ज मुसमन मकफ़ूफ महज़ूफ" पर आयोजित किए गए मुशायरे का तरही मिसरा था - कहती है ये ख़ुशियों की सहर, ईद मुबारक

तिलक राज कपूर

माँ तेरी दुआओं का असर "ईद मुबारक"
हैं दूर बहुत मुझसे ख़तर - ईद मुबारक
दहकाँ तेरी मुश्किल नहीं समझेगा ज़माना
है भूख इधर और उधर "ईद मुबारक"
हर मोड़ पे कुछ प्रश्न खड़े रोक रहे थे
मुमकिन हुआ फिर भी ये सफ़र - ईद मुबारक
जो सुब्ह का भूला हुआ घर छोड़ गया था
आया है वही लौट के घर - ईद मुबारक
प्रश्नों की क़तारों में खड़ी भीड़ को देखो
मिलती है जिसे बनके सिफ़र "ईद मुबारक"
इक बार सभी दर्द भुलाकर उन्हें कहदे
"खुशियों से भरे आपका घर" - ईद मुबारक
आग़ोश में इक ख़्वाब भरे सोच रहा हूँ
वो चाँद कहे देख क़मर - ईद मुबारक

डॉ. सुधीर त्यागी

खुशहाल हो हर एक बशर ईद मुबारक।
बख्शे खुदा रहमत की नज़र ईद मुबारक।
दुश्मन भी अगर हो तो गले उसको लगा ले।
कहती है ये खुशियों की सहर ईद मुबारक।
कुछ लोग जो भटके हुए हैं राहे नबी से।
उनको भी चलो कह दें मगर ईद मुबारक।
कल छत पे मेरी चाँद लगा आ के टहलने,
और हँस के कहा जाने जिगर ईद मुबारक।
मिलने से गले पहले ज़रा आँख मिलाओ।
कहने का ज़रा सीखो हुनर ईद मुबारक।
इस बार गले लगने में दोनों को झिझक है।
सोलहवें बरस का है असर ईद मुबारक।

बासुदेव अग्रवाल 'नमन'

रमजान गया आई नज़र ईद मुबारक,
खुशियों का ये दे सबको असर ईद मुबारक।
घुल आज फ़िज़ा में हैं गए रंग नए से,
कहती है ये खुशियों की सहर ईद मुबारक।
पाँवों से ले सर तक है धवल आज नज़ारा,
दे कर के दुआ कहता है हर ईद मुबारक।
ये ईद है त्योहार मिलापों का अनोखा,
दूँ सब को 'नमन' आज मैं कर ईद मुबारक।

❑❑❑

समीक्षा

प्रेरक होती है जीवन की हर घटना

डॉ. (सुश्री) शरद सिंह

पुस्तक: अंदर का स्कूल (संस्मरण); लेखक: डॉ. मनोहर अगनानी
प्रकाशक: शिवना प्रकाशन

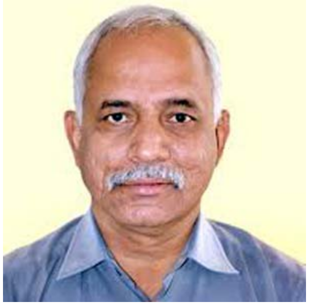

भारतीय साहित्य जगत् में प्रेरक घटनाओं एवं कथाओं के लेखन की सदियों पुरानी परम्परा रही है। 'पंचतंत्र' की कहानियाँ विशुद्ध प्रेरक कहानियाँ रहीं। किन्तु इस प्रकार के लेखन को प्राय: बालोपयोगी मान लिया जाता था लेकिन पश्चिम के कुछ लेखकों की पुस्तकें हिन्दी में अनूदित हो कर आने के बाद प्रत्येक आयुवर्ग के लिए प्रेरक-लेखन मुखर रूप से सामने आया। बीसवीं सदी के अंतिम दशक से अब तक प्रेरित करने वाली पुस्तकें तथा सफलता सम्बन्धी साहित्य हर बुकस्टॉल पर दिखाई देने लगा है। प्रसिद्ध अमेरिकी प्रेरक गुरु जिग जिगलर की कृति ''शिखर पर मिलेंगे'' ने बहुतेरे पाठकों को अपनी ओर आकर्षित किया। उसके बाद स्वेट मॉर्डन और शिव खेड़ा की पुस्तकों ने भारतीय युवाओं के बीच मोटिवेशन यानी प्रेरणा के महत्त्व को बखूबी स्थापित कर दिया। इस प्रकार की अधिकतर पुस्तकों की शैली उद्धरण से चल कर उपदेशात्मक हो जाती है। गोया लेखक का तीव्र आग्रह हो कि उसके उद्धरण आकट्य हैं और उनसे प्रेरणा ले कर चमत्कारिक परिवर्तन हो सकते हैं। जबकि प्रेरणा देने का वास्तविक कार्य वह विवरण करता है जिसमें जीवन अनुभवों की पूरी सच्चाई हो और पढ़ने वाले को वे अपने अथवा अपने आस-पास के अनुभव लगें। इस संदर्भ में मक्सिम गोर्की की आत्मकथा और हेनरी डेविड थोरो के एकांतिक अनुभवों के विवरण को शिद्दत से याद किया जा सकता है।

अभी हाल ही में शिवाना प्रकाशन से एक संस्मरणात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई है जो प्रेरक-पुस्तकों की आधुनिक लेखन शैली के साँचे से बाहर हो कर भी प्रेरणादाई है। इस पुस्तक का नाम है ''अंदर का स्कूल''।

''अंदर का स्कूल'' डॉ. मनोहर अगनानी की वह संस्मरणात्मक पुस्तक है जो प्रत्येक पाठक को अपने अतीत और अपने अंतर्मन पर्यावरण को टटोलने का आग्रह करती है। किसी भी व्यक्ति के जीवन में हमेशा बड़ी घटनाएँ नहीं घटतीं, छोटी-छोटी घटनाओं से जीवन का क्रम बंधा होता है। इन्हीं छोटी घटनाओं के साथ हमारे मानसिक चरित्र का निर्माण होता चलता है। प्रश्न बस यही रहता है कि हम मामूली-सी प्रतीत होने वाली घटना के प्रति कितने संवेदनशील हैं या फिर कितने जागरूक हैं? प्रत्येक व्यक्ति की ग्राह्य क्षमता परस्पर भिन्न होती है। एक विद्यार्थी शिक्षक के डाँटने पर सुधर जाता है और अपनी पढ़ाई के प्रति एकाग्र हो उठता है लेकिन आवश्यक नहीं कि यही प्रभाव दूसरे विद्यार्थी पर भी दिखे। हो सकता है कि दूसरा विद्यार्थी शिक्षक की डाँट खाने के बाद पढ़ाई से विमुख होने लगे। डॉ. मनोहर अगनानी इनमें से पहले किस्म के छात्र हैं जो जीवन के अनुभव रूपी शिक्षक से डाँट खा कर भी कुछ न कुछ सीखने को उद्यत हो उठते हैं और सदा छात्र बने रहना चाहते हैं ताकि सीखने का क्रम बना रहे। डॉ. मनोहर अगनानी की किताब ''अंदर का स्कूल'' पढ़ते हुए मक्सिम गोर्की की आत्मकथा के दो खण्ड स्मृतियों में सहसा कौंध जाते हैं- ''मेरा बचपन'' और ''मेरे विश्वविद्यालय''। मक्सिम गोर्की ने अपनी आत्मकथा लिखते हुए अपने जीवन के अनेक छोटे बड़े अनुभवों को बड़ी ही बारीकी से पिरोया था। लेकिन जब डॉ. अगनानी अपनी पत्नी और परिवार के प्रसंग पर आते हैं तो महात्मा गाँधी की आत्मकथात्मक पुस्तक ''सत्य के साथ प्रयोग'' याद आने लगती है। महात्मा गाँधी ने अपने परिवार के प्रति अपने विचारों को खुल कर लेखबद्ध किया था। ''मेरा बचपन'', ''मेरे विश्वविद्यालय'', ''सत्य के साथ प्रयोग'' और ''अंदर का स्कूल''- इन चारों किताबों में विवरण की विशदता और बारीकी के आधार पर भले ही साम्य न हो लेकिन इन चारों किताबों की बुनियाद एक ही है, वह है अपने जीवन अनुभवों को जनहित में साझा करना।

प्रत्येक मनुष्य की सदा यही अभिलाषा रही है वह दूसरे के मन में प्रवेश कर सके और उसे अपनी बात मनवाए तथा उसकी बातें जान ले। प्रेरक व्यक्ति एक सीमा तक यही काम करते हैं। वे अपने शब्दों के माध्यम से दूसरे के मन में प्रवेश करते हैं और उसकी समस्याओं, उसकी पीड़ा अथवा उसकी कमियों से जुड़ कर उसे संकीर्ण वर्तुल से उसे बाहर निकालने का प्रयास करते हैं। दूसरे के मन में प्रवेश करने और उसे पढ़ कर उसके विचारों को बदलने के विषय पर सन् 2010 में हॉलीवुड की एक उल्लेखनीय फिल्म आई थी जिसका नाम था ''इंसेप्शन''। निर्माता एवं लेखक क्रिस्टोफर नोलन की इस फिल्म में लियोनार्डो डी कैप्रियो, ऐलेन पेज, जॉसेफ गॉर्डन-लेविट, मैरियोन कॉटिलार्ड, केन वातानाबे, टॉम हार्डी, दिलीप राव, सिलियन मर्फी, टॉम बेरेन्गेर, और मायकल केन ने

प्रमुख भूमिकाएँ निभाई थीं। कहानी कुछ इस प्रकार थी कि डॉमिनिक डॉम कॉब (लियोनार्डो डी कैप्रियो) और आर्थर (जॉसेफ गॉर्डन लेविट) खुद को "एक्सट्रेक्टर" कहते हैं, जिनका एक खुफिया संगठन है जो एक प्रायोगिक सैन्य तकनीक द्वारा अपने 'टार्गेट' के अंतर्मन में सेंध लगाकर और एक-दूसरे की साझा सपनों के अनुभवों के जरिए उनसे जुड़ी जानकारियाँ बाहर निकालते हैं। उन्हें एक लक्ष्य दिया जाता है, जो एक जापानी बिजनेसमैन है। लेकिन सायतो के दिमाग़ी राज चुराने के दौरान उन्हीं सपनों में कॉब को अपनी दिवंगत पत्नी की यादों की दखलांदजी का सामना करना पड़ता है। यह एक अवचेतन पर दूसरे अवचेतन के कब्जे का कठिन-सा समीकरण है जिसे सामान्यतौर पर समझना कठिन है। यही समीकरण प्रेरक पुस्तकों को प्रभावी सिद्ध होने या न होने का निर्णय करता है। हर वयस्क व्यक्ति की अपनी एक सोच होती है और उसके जीवन के प्रति अपने मानक होते हैं, उन मानकों को बदलना अथवा प्रभावित करना इस बात पर निर्भर करता है कि लेखक ने वह सब कैसे लिखा है जो वह सबको पढ़ाना चाहता है।

फ्राइडयुग के बाद दशकों तक वह विचार मान्य रहा जिसे फ्राइड ने स्थापित किया था। आस्ट्रिया के तंत्रिकाविज्ञानी एवं मनोविश्लेषक सिगमंड फ्रायड का मत था कि वयस्क व्यक्ति के स्वभाव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जा सकता क्योंकि उसके व्यक्तित्व की नींव बचपन में ही पड़ जाती है, जिसे किसी भी तरीके से बदला नही जा सकता। यद्यपि बाद के शोधों से यह साबित हो चुका है कि मनुष्य मूलत: भविष्य उन्मुख होता है। वस्तुत: मनुष्य अपने अनुभवों से सीखता है और एक व्यक्ति के अनुभव दूसरे व्यक्ति को भी बहुत कुछ सिखा देते हैं अर्थात् जीवन से बड़ा स्कूल और अनुभवों से बड़ा शिक्षक और कोई नहीं।

फ्रांसीसी लेखक एवं विचारक ज्यांपाल सार्त्र ने परामर्श के लिए कई घण्टों का समय निर्धारित रखा था। उसमें वे उन्हीं प्रसंगों को छेड़ते थे जिसमें कठिनाइयों के बीच प्रसन्नता से रह सकना और सफलता के मार्ग

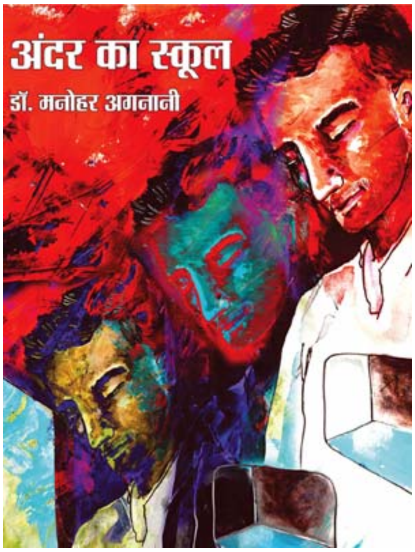

पर चल सकना सम्भव हुआ हो। ऐसे घटनाक्रमों के लिए उनकी स्मृति एक विश्व कोष मानी जाती थी। जो भी परामर्श वे देते थे वे उनके पीछे सिद्धान्त की विवेचना थोड़ी और घटनाक्रमों की लड़ी बहुत लम्बी होती थी। उदाहरणों के माध्यम से वे यह समझाते थे कि साधन सम्पन्न व्यक्ति किस प्रकार अपनी क्षमताओं को सत्प्रयोजनों में लगाकर अपने क्षेत्र में प्रशंसा के पात्र बने। साथ ही उन्हें ऐसी घटनाओं की स्मृति भी कम नहीं थी जिनमें कठिनाइयों से घिरे हुए लोगों ने अपने धैर्य, साहस और अनवरत प्रयत्न के आधार पर इतना कुछ कर दिखाया जितना कि साधन सम्पन्न लोगों के लिए भी सम्भव नहीं थे।

भारतीय परम्परा में आत्मावलोकन की प्रक्रिया को एक योगिक क्रिया के रूप में अपनाया गया है। डॉ. मनोहर अगनानी की पुस्तक "अंदर का स्कूल" प्रेरणा देने का माध्यम आत्मावलोकन के मार्ग को चुनती है। अमेरिका के निबंधकार, कवि, नाटककार, इतिहासकार और प्र.तिवादी हेनरी डेविड थोरो सन् 1848 में वे दो वर्ष तक एकांत में वाल्डेन सरोवर में रहे, जिससे निकली उनकी कृति "वाल्डेन" को क्लासिक का दर्जा प्राप्त है। "सिविल डिसओबेडिएंस" उनकी एक और महान् कृति है। महात्मा गाँधी ने इनके "सिविल डिसओबेडिएंस" (असहयोग आंदोलन) के सिद्धान्त को स्वतंत्रता संघर्ष का अस्त्र बनाया था। यह थोरो का विद्रोही स्वभाव और प्रकृति प्रेम ही था कि वे जीवन का अर्थ खोजते-खोजते एक कुटिया बनाकर वाल्डेन सरोवर के किनारे बस गए। थोरो के शब्दों में-"मैंने वन-प्रवास आरम्भ किया, क्योंकि मैं विमर्शपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता था, जीवन के सारभूत तथ्यों का ही सामना करना चाहता था, क्योंकि मैं देखना चाहता था कि जीवन जो कुछ सिखाता है, उसे सीख सकता हूँ या नहीं। मैं यह भी नहीं चाहता था कि जीवन की संध्या वेला में मुझे पता चले कि अरे, मैंने तो जीवन को जिया ही नहीं। मैं तो गहरे में उतरना चाहता था।"

गहरे उतरना आत्मावलोकन के माध्यम से ही संभव है। "अंदर का स्कूल" के लेखक ने अपने भीतर झाँकते हुए वे सारी बातें साझा की हैं जो उन्हें लगती हैं कि लोगों को उसे जानना चाहिए। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी डॉ. मनोहर अगनानी ने किताब लेखन की शुरूआत 2006 में भ्रूण हत्या पर लिखी गई दो किताबों "मिसिंग गर्ल्स" और "कहाँ खो गई बेटियाँ" से की थी। जिसके माध्यम से उन्होंने देश में भ्रूण हत्या का मामला उठाया था। "अंदर का स्कूल" डॉ. अगनानी की अत्यंत रोचक पुस्तक है। इसमें 52 संस्मरण प्रसंग हैं। इनमें स्त्रियों के सम्मान एवं अधिकारों की स्थापना, अपनत्व का महत्त्व एवं जीवन को सहज बनाए रखने का आग्रह है। सहजता तभी बनी रह सकती है जब व्यक्ति अपनी खूबियों के साथ-साथ अपनी कमियों को भी सब के सामने खोल कर रख दे। लेखक ने ठीक यही किया है। 'हर अध्यापक हो जाए मेरे प्रोफेसर की तरह' में वे मेडिकल कॉलेज में पढ़ते समय अंग्रेज़ी भाषा के ज्ञान की कमी के बारे में बताते हुए इस कमी के कारण आई कठिनाइयों को साझा करते हुए यह भी खुलासा करते हैं कि एक प्रोफेसर की प्रेरणा ने उनकी इन कठिनाइयों को कैसे दूर कर दिया।

लगभग हर घर में सुबह यह दृश्य दिखाई दे जाता है कि घर का पुरुषवर्ग अख़बार में दृष्टि गाड़ाए बैठा रहता है, भले ही उसकी पत्नी को उससे कोई ज़रूरी काम हो, भले ही सकी माँ अपने टूटे चश्में को बनवाने के बारे में उससे बात करना चाहती हो, भले ही उसकी संतान उससे अपने भविष्य की चिन्ताएँ शेयर करना चाहती हो, लेकिन उस समय अख़बार को पढ़ने की हठी प्रक्रिया व्यक्ति को लगभग

अपारिवारिक बना देती है। इसी पुस्तक में एक लेख है 'सोच में सुधार'। इस लेख में लेखक ने स्वयं को इंगित करते हुए लिखा है–"मेरा दिल दिमाग़ से जब यह पूछता है कि अख़बार पढ़ने से ऐसा क्या हासिल हो जाता है, जो परिवार की इच्छाओं, अपेक्षाओं से बड़ा है? तो इसका जवाब दिमाग़ दे नहीं पाता। इसलिए अब कोशिश कर रहा हूँ कि अपनी इस सोच में सुधार करूँ। थोड़ा-बहुत कामयाब हुआ हूँ, लेकिन कभी-कभी वापस वहीं पहुँच जाता हूँ, क्योंकि अभी मेरे दिमाग़ को शायद दिल की इच्छा को पूरी तरह आत्मसात् करना नहीं आया है।"

डॉ. अगनानी ने स्त्रीविमर्श के दो महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाए हैं वह भी बड़ी सहजता से और अपने अनुभवों के साथ। पहला मुद्दा तो यह है कि पति कहीं भी आए-जाए उस पर कोई बंदिश नहीं होती है लेकिन पत्नी के आवागमन पर हज़ार बंदिशें होती हैं। उस पर यदि पत्नी अपने मित्रों के साथ (भले ही महिला मित्रों के साथ) विदेशयात्रा की अनुमति माँगे तो गिनती के ही ऐसे पति होंगे जो प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे देंगे। लेखक अप्रत्यक्ष रूप से इस तथ्य को रेखांकित करते हुए अपनी पत्नी के मित्रों संग जापान घूमने जाने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हैं और इच्छा प्रकट करते हैं कि ऐसे निर्णय और भी होने चाहिए। देखा जाए तो यह बहुत ही बुनियादी बात है तो दाम्पत्य जीवन में परस्पर विश्वास पर टिकी होती है। यदि परस्पर विश्वास दृढ़ है तो कहीं कोई दुविधा होने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। दूसरा मुद्दा है आधिपत्य जमाने का। पुरुष स्त्री को अपनी सम्पत्ति मानने लगे तो संबंधों में कठिनाइयाँ आने लगती हैं। ऐसे में बराबरी का दर्ज़ा नहीं रह जाता है जबकि प्रेम और संबंध बराबरी के धरातल पर ही स्थायीरूप से खड़े रह सकते हैं। "तुम किसी और को चाहोगी, तो मुश्क़िल होगी" इस फिल्मी गीत को अपने लेख का शीर्षक बनाते हुए डॉ अगनानी ने साहित्य जगत का उदाहरण दिया है–"आदिकाल से जिस तरह की प्रेम कविताएँ, पुरुष लिखते हैं या जिस तरह का नायिका भेद पुरुष करते आए हैं या जिस तरह का नख-शिख वर्णन वे स्त्री सौंदर्य को ले कर करते हैं, अगर कवयित्रियाँ भी ऐसा करने लगें तो क्या इस एकाधिकारवादी समाज में भूचाल नहीं आ जाएगा?"

लेखक ने अपने संस्मरणों में अपनी जुड़वा बहन को याद किया है, अपने पिता, अपनी माता और अपने श्वसुर को याद किया है। लेखक ने अपनी पत्नी के प्रति अपने प्रेम और दायित्वों को बेझिझक सामने रखा है। लेखक अपनी बेटी के प्रति एक चिन्तित पिता की भूमिका में भी दिखाई देता है। यहाँ तक कि वह स्वयं की वृद्धावस्था के प्रति भी चिंतन करता है और एक अच्छे बुढ़ापे की कल्पना करते हुए स्वयं के लिए आचरण तय करता है–"मैं अपने बुढ़ापे को बचपन की तरह जीना चाहूँगा। दुआ करता हूँ कि अव्वल तो किसी से नाराज़ न हो सकूँ और किसी से नाराज़ भी हो जाऊँ, तो वह रहे क्षणिक।"

डॉ. मनोहर अगनानी की यह संस्मरणात्मक किताब पाठकों के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हो सकने की क्षमता रखती है। अपनी इस पुस्तक के बारे में स्वयं लेखक का कथन है कि –"मेरी जीवन की कई ऐसी घटनाएँ हैं जिन्हें मैं हमेशा अकेले में याद कर उनके बारे में सोचता रहता था। एक साल पहले मैंने इन घटनाओं को पेपर पर उतारना शुरू किया। प्रशासनिक कामों के साथ यह कर पाना मुश्किल होता है। लेकिन मेरा मानना है कि हर व्यक्ति को अपनी बातों का इजहार करने का मौका देना चाहिए।"

"अंदर का स्कूल" उपदेशात्मक नहीं प्रेरक पुस्तक है किन्तु अप्रत्यक्ष प्रेरक। इसीलिए यह अधिक रोचक और पठनीय हो गई है। उपदेश हमेशा बोझिल लगते हैं लेकिन जीवन के घटनाओं की साझेदारी हमेशा रोचक साबित होती है। यह एक हद तक 'इंसेप्शन' का काम करती है। जब कोई आग्रह चेतना के साथ-साथ अवचेतन को भी स्पर्श करे तो वह महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि प्रेरक होती है जीवन की हर घटना, भले ही ऊपरी तौर पर वह मामूली-सी लगे पर असर छोड़ती है गहरा।

❑❑❑

एम-111, शांतिविहार, रजाखेड़ी,
मकरोनिया,
सागर (म.प्र.)-470004
मोबाईल : 09425192542

तरही मुशायरा

इस बार ईद के अवसर पर "बहरे हज़ज मुसमन मकफ़ूफ महज़ूफ" पर आयोजित किए गए मुशायरे का तरही मिसरा था – कहती है ये ख़ुशियों की सहर, ईद मुबारक

राकेश खंडेलवाल

रह रह के हुलसता है जिगर ईद मुबारक
कहती है ये ख़ुशियों की सहर ईद मुबारक

विस्फोट ही विस्फोट हैं हर सिम्त जहाँ में
रब की नसीहतों के सफे जाने कहाँ है
इस्लाम का ले नाम उठाते है जलजला
चाहे है हर एक गाँव में बन जाए कर्बला
कोशिश है कि रमजान में घोल आ मोहर्रम
अब और मलाला नहीं सह पाएगी सितम
आज़िज़ हो नफ़रतों से ये कहने लगा है दिल
अब और न घुल पाए ज़हर ईद मुबारक
कहती है ये ख़ुशियों की सहर ईद मुबारक

अल कायदा को आज सिखाना है कायदा
हम्मास में यदि हम नहीं तो क्या है फायदा
कश्मीर में गूँजे चलो अब मीर की गज़लें
बोको-हरम का अब कोइ भी नाम तक न ले
काबुल हो या बगदाद हो या मानचेस्टर
पेरिस मे न हो खौफ़ की ज़द मे कोइ बशर
उतरे फलक से इश्क़ में डूबी जो आ बहे
आबे हयात की हो नहर, ईद मुबारक
कहती है ये ख़ुशियों की सुबह ईद मुबारक

शेख़ चिल्ली

सावन की झड़ी लाई ख़बर ईद मुबारक़
हो काश दुआओं में असर, ईद मुबारक
सलफास निगल कर भी वो बोला, मेरे बच्चों
रखना मेरे खेतों पे नज़र, ईद मुबारक़
मायूस खड़े काकभगोड़े ने बताया
कह कर था गया मुझ से बशर "ईद मुबारक़"
सुनकर ये टपकती हुई छत फूट के रोई,
चलता हूँ मैं लम्बा है सफ़र, ईद मुबारक़
क्रिसमस न, दीवाली न तो होली न गुरुपर्व
मज़दूर की किस्मत में किधर ईद मुबारक़
सरकार की नीयत पे लगे दाग धुलेंगे
हो जाय किसानों की अगर ईद मुबारक़
बक़वास है, सौ फ़ीसदी झूटी ये ख़बर है
कहती है ये ख़ुशियों की सहर, ईद मुबारक?

❑❑❑

शिवना प्रकाशन : पुस्तकों के नए संस्करण

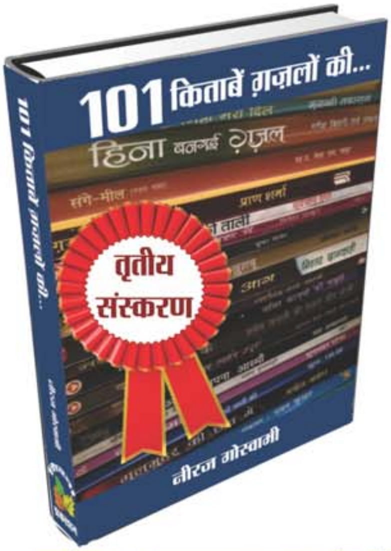

सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार तथा स्तंभ लेखक
श्री नीरज गोस्वामी की पुस्तक
समीक्षाओं का संग्रह-
101 किताबें ग़ज़लों की...
मूल्य : 250 रुपये
तीसरा संस्करण

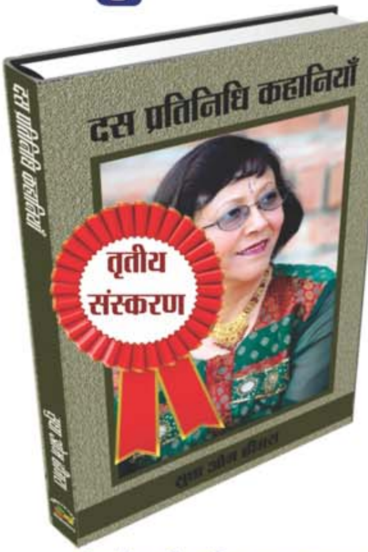

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार,
उपन्यासकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा की
प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह-
दस प्रतिनिधि कहानियाँ
मूल्य : 100 रुपये
तीसरा संस्करण

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, कवयित्री
तथा लघुकथाकार ज्योति जैन का
प्रथम उपन्यास-
पार्थ... तुम्हें जीना होगा!
मूल्य : 175 रुपये
दूसरा संस्करण

हिन्दी के चर्चित कहानीकार तथा
उपन्यासकार पंकज सुबीर की
कहानियों का संग्रह-
कसाब.गांधी@यरवदा.in
मूल्य : 150 रुपये
तीसरा संस्करण

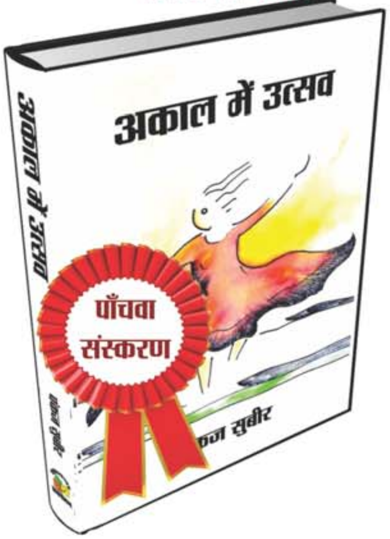

हिन्दी के चर्चित कहानीकार पंकज
सुबीर का बहुचर्चित तथा प्रशंसित
उपन्यास-
अकाल में उत्सव
मूल्य : 250 रुपये
पाँचवा संस्करण

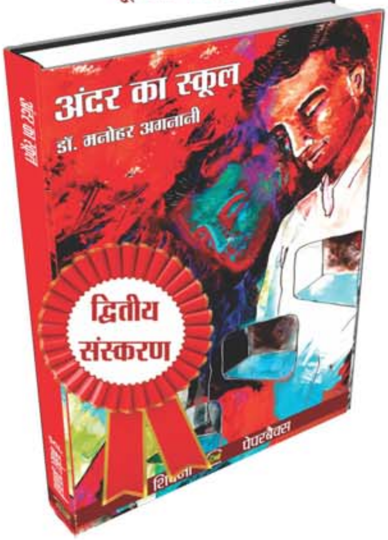

वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी तथा
लेखक डॉ. मनोहर अगनानी के लेखों
का संग्रह-
अंदर का स्कूल
मूल्य : 150 रुपये
दूसरा संस्करण

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● July-September 2017 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।